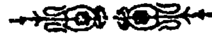
"गृहलक्ष्मी"-ग्रन्थमाला सं० २८.

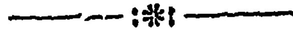
महिला मनोरमा

विविध विषयों से पूर्ण स्त्री-शिक्षा
का अपूर्व ग्रन्थ



लेखक

मुं० बैजनाथ सहाय, मुख़्तार।



प्रकाशक

पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०

"गृहलक्ष्मी"-कार्य्यालय,

प्रयाग।

परिवर्द्धित संस्करण | सं० १९८२ वि० | मूल्य अठारह आना

पुस्तक मिलने का पता—
मैनेजर, "गृहलक्ष्मी"-कार्य्यालय,
प्रयाग।

—–:o:——

——:※:——

मुद्रक—
पं० सुदर्शनाचार्य्य बी० ए०,
सुदर्शन प्रेस,
प्रयाग।

समालोचना

(१)

विलोकते ही महिला—मनोरमा,
नितान्त मेरा मन मुग्ध हो गया।
मनो अमा की निश में चकोर ने,
लखी कला कोटि-कला-निधान की॥

(२)

लतावली शैशिर वायु से हता,
खिले यथा वायु लगे वसन्त की।
स्त्रियाँ अविद्या-हिम से हता तथा,
प्रफुल्ल होंगी इस के प्रचार से॥

(३)

मनोरमा की कल शीर्षकावली,
सुरत्न की संहति है गुणान्विता।
बनी उसी से यह रत्नमालिका,
गले बिराजे महिला-समाज के॥

(४)

कुवासना क्यों मन में बनी रहे,
करस्थ है जो महिला मनोरमा।
प्रसून की हो नवबाटिका जहां,
वहां न दुर्गन्धि कभी रुकी रहे॥

(५)

न हों सभी भूषण भी इसे मिले,
तथापि है चित्त विमोहिनी बड़ी।
मनोज्ञरूपा मित-भूषणा-सती,
बताइए क्या मन मोहती नहीं?

—रामचरित उपाध्याय।

भूमिका

प्यारी बहिनो ! इससे पहिले "कन्या-कौमुदी" नाम की एक साधारण पुस्तक लिख कर मैंने आपको कुछ तुच्छ सेवा की थी। यद्यपि उक्त पुस्तक के विषय में मुझको आप लोगों का कोई विचार किसी लेख द्वारा विदित नहीं हुआ, तथापि उसकी माँग स्त्री-जगत् में जिस भाँति जारी रही उससे मुझे सन्तोष है। अब यह "महिला मनोरमा" एक दूसरा लघुतर उपहार आप लोगों के दिलबहलाव के लिए सेवा में उपस्थित करने का साहस करता हूं। यदि इससे आप लोगों का कुछ मनोरञ्जन हो सकेगा और आप लोग कुछ शिक्षा लाभ कर सकेंगी तो मैं अपने को बड़ा बड़भागी समझूँगा।

न चाह मान की मुझको न कुछ प्रशंसा की।
बस एक हित कामना आर्यकुल सुवंशा की॥

विनीत—

वैजनाथ सहाय।

परिचय

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक उन रण-बाकुरों में से एक हैं जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम समय में स्त्रियों की शिक्षा तथा स्वतन्त्रता के लिये देश के संकीर्ण विचारों की विकट कटक से घोर युद्ध आरम्भ किया था। पहिले आप उर्दू के मैदान में थे परन्तु जब प्रयाग के प्रसिद्ध पंडित सुदर्शनाचार्य्य ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध अपना 'सुदर्शन' प्रेस चलाया तब आप अचानक हिन्दी के कार्य-क्षेत्र में दिखलाई पड़े। उसी समय आपने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कन्या कौमुदी' की रचना की।

कन्या कौमुदी के विषय में मुझे इतना ही कहना है कि 'देवी' तथा 'लक्ष्मी' के पवित्र पद तक पहुँचने के लिये एक स्त्री में जिन जिन गुणों के विकास की आवश्यकता है 'कन्या कौमुदी' में उन सब का समावेश है। साथ ही प्रत्येक निबन्ध के नीचे लेखक ने उसी विषय की एक एक सुन्दर कहानी जड़ दी है। लेखक की रचना चातुरी यहीं देखने में आती है। समय बिताने के बहाने से भी जिस कन्या ने इस पुस्तक को एक बार उठाया कि फिर यह उसकी सहेली—उसकी अध्यापिका-उसकी कामधेनु बन जाती है।

कन्या कौमुदी के विषय में एक पंडित जी मुझसे बहुधा कहा करते थे कि लेखक ने लेखनी को मोहन-मन्त्र से अभिमन्त्रित करके इस पुस्तक को लिखा है। बात यह थी कि उनकी

एक छोटी सी लड़की इस पुस्तक को इतने प्रेम से पढ़ती थी कि यह बृहद्काय पुस्तक उसे कंठाग्र हो गई थी। पुस्तक की कहानियों को सुनाते समय वह बीच बीच में प्रसंगानुसार उनके पात्रों की प्रशंसा तथा निन्दा भी किया करती थी। बच्चों के हृदय तक इस प्रकार पहुँचना साधारण बुद्धि का काम नही है। यह किसी अलौकिक कवि प्रतिभा ही का काम है। जो हो, अभी हमारे देश में सभ्यता तथा संस्कृति (Civilisation and Culture) का इतना विकास नहीं हुआ है कि ऐसी पुस्तकें घर घर में स्थान पा सकें। समय आवेगा जब ऐसी पुस्तकें प्रत्येक कन्या के लिये खोजी जायेंगी। इस अवसर पर एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि इस पुस्तक का पर्य्याप्त प्रचार हुआ।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक की दूसरी कृति है। आज उसी का द्वितीय संस्करण पाठकों के हाथ में है। इस पुस्तक में लेखक कवि के रूप में आता है। यहाँ कवि का वह विहंगम रूप नहीं है जो शून्य गगन में उड़ान भरता है और मनमाने गीत गाता है। यह कवि उस विनीत बुलबुल के समान है-जिसने किसी घर से लगे हुए उपवन में अपना घौंसला बना लिया है और वहीं कलियों से अपनी फ़रियाद सुनाया करता है। कन्याओं के लिये, कुल ललनाओं के लिये यह कवि हिन्दी में शिक्षा प्रद साहित्य की सृष्टि किया करता है। इस कविने अपनी प्रत्येक कविता किसी न किसी शिक्षा या सुधार के उद्येश्य से ही लिखी है। यह पुस्तक विविध विषयों से सम्पन्न है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों के जितने सामाजिक स्वरूप हो सकते हैं लेखक ने सब को दिखलाया है। प्रायः प्रत्येक स्त्री अपना स्वरूप इस पुस्तक में देख सकती है। ये स्वरूप सादे

और सच्चे हैं। इनकी सादगी और सच्चाई ही में इनका सब कुछ है। देखिये, एक सास अपनी बहू से किस प्रकार अपना दुखड़ा रो रही है :—

"मुझ पर दया करने को जब तुझने मुहल्ले वालियाँ।
कहती है तब तू नाम पर दे कर मेरे सौ गालियाँ॥
चमका के मेरी ओर उँगली होके टेढ़ी आड़ में।
कहती है ऐसी सास को मैं झोंक दूँगी भाड़ में॥"

कहिये, कैसा सुन्दर शब्द-चित्र है? पढ़ते समय जान पड़ता है कि हम कुछ देख रहे हैं। यह वह चित्र है जिसको यही कवि खींच सकता है। अहा! इसकी सादगी! 'इस सादगी पे कौन न मरजाय या ख़ुदा।' ध्यान से देखिये इसकी सादगी, सच्चाई और सफ़ाई में किसी उस्ताद का हाथ नज़र आता है।

इन कविताओं के विषय में मुझे यही कहना है कि यदि ये किसी साहित्यज्ञ को अरुचिकर जान पड़ें तो वे इतना ही जान कर सन्तोष करें कि ये कवितायें ग्रामोफोन की रिकर्ड नहीं हैं जिसमें किसी दूसरे की ध्वनि भरी गई है ये साधारण बाँस की बाँसुरी हैं जिसमें यह कवि अपने हृदय की पवित्र उमङ्गों को अपनी लय में गाता है। पुस्तक का द्वितीय भाग गद्यमय है। शिक्षा की दृष्टि से इस भाग का महत्व बहुत बढ़ा चढ़ा है। विशेष क्या--पाठक तथा पाठिकायें स्वयं देखेंगी।

पुस्तक की भाषा के विषय में यहाँ यह बतला देना बहुत ही आवश्यक जान पड़ता है कि ग्रन्थकर्ता को इस बात का सदा ध्यान रहा है कि पुस्तक की भाषा बोल चाल की भाषा

को चूमती चले। बलात्कार पांडित्य-प्रकाशन अथवा साहित्यिक नट-क्रिया से ग्रन्थकर्ता को कुछ सम्बन्ध नहीं रहा है। मुझे, यहाँ इतना ही कहना है कि प्रचलित परिमार्जित हिन्दी तथा इस पुस्तक की हिन्दी में उतना ही अन्तर है जितना अट्टहास और मुस्कुराहट में या धूप और चाँदनी में होता है। अच्छा हो यदि पाठक मुझे यहाँ यह कहने की आज्ञा दें कि इस पुस्तक की भाषा ठीक वैसी ही है जैसी कुसुम—कोमल हृदयवाली ललनाओं के लिये चाहिये।

अन्त में इस पुस्तक के ज्ञानवृद्ध, मानवृद्ध, वयोवृद्ध लेखक के विषय में यह कहते हुये परिचय समाप्त करता हूं कि आप एक उदार विचार के पुरुष हैं। आप का हृदय समवेदना का एक साम्राज्य है। आप की नम्रता, सज्जनता तथा धार्मिकता मनन करने योग्य है। अपने स्वभाव से आप सब को प्रसन्न कर लेते हैं। आप से मिलने से यह पता चलता है कि इस ज़माने में भी कुछ लोग रह गये हैं। इस समय आप इतिहास प्रसिद्ध कुलीन कायस्थों की बस्ती सागरपाली ज़िला बलिया के एक प्रसिद्ध भाग के कुल-पति हैं।

—राम सिंहासन सहाय श्रीवास्तव्य, 'मधुर'

मुख़्तार, बलिया।



विषय सूची

पद्य-भाग

गद्य-भाग

महिला मनोरमा

(पद्य-भाग)



१—विनय

स्वामी का दीन-दयालु नाम सुखदाई,
सुन कर मैं प्यारे शरण तुम्हारी आई।
है तुम्हें दीन का खोज, मुझे दाता का,
क्या ही सुन्दर संयोग बना है बाँका॥

तुम भ्रमो जानि जनि दुहिता अन्य धरा की,
मैं तो हूँ सुता दीन भरतमाता की।
जिसकी सब सम्पति, सत्व, तेज, बल सारे,
धन, ज्ञान, मान सब गये काल पर वारे॥

भारत में जैसी दुर्गति अबलाओं की,
नहिँ सड़े नाबदानों के भी कीड़ों की।
यह आर्य भूमि है जहाँ मान हम सब का,
लक्ष्मी देवी का पद देकर होता था॥

तहँ आज नरक की खान नारि कहलावें,
बस यही चाहता जी पताल धस जावें।

शिक्षा सुधार की रहीं न हम अधिकारी,
तो वृथा यहाँ क्यों सिरजी जाति हमारी ॥
हैं कुछ ऐसे जो नारि पक्ष करते हैं;
पर वे भी लोकाचार देख डरते हैं।
है आज निराशा-घटा नारि-नभ छाये,
बिन दया-समीर तुम्हारे कौन उड़ाये ॥

—:o:—

२—विनय

हे दीन बन्धु! करुणाकर भाव कब धरोगे,
हम आर्य नारियों पर अब कब दया करोगे।
कब से यहाँ की अबला दुख भार ढो रही हैं,
दुर्बन्धनों में जकड़ी त्रयताप भोगती हैं ॥
अति क्रूर दुष्ट निर्दय आचार देश वाले,
क्षण क्षण सता रहे हैं फाँसी गले में डाले।
आगे बढ़ें तो अंकुश, पीछे कठिन कटारी,
दायें त्रिशूल तीक्षण, बायें विकट कुठारी ॥
देखो दरिद्रियों को दायज सता रहा है,
परिणाम जो भयंकर ऐसा दिखा रहा है।
बहिनें हमारी जल जल सुरलोक जा रही हैं,
कारी सती की रीतें देखो चला रही हैं ॥
जीवन हमारा होता जिस हाथ में समर्पित,
न स्वभाव गुण परस्पर न मनों के भाव परिचित।
ऋषि रीति शुचि स्वयम्बर विपरीत हो गई है,
स्वाधीनता हमारी इस भाँति खो गई है ॥

कैंची बनी हैं घर में ढोरों से नहीं कम हैं,
आकार मानवी है फिर भी मनुज नहीं हैं।
सब आस मन की टूटी देखीं सभा कमेटी,
परिणाम-शून्य लम्बी बातें, सुधा लपेटी॥
मझधार में पड़ी है नैया प्रभो! हमारी,
तुम इसको पार कर दो आई शरण तुम्हारी॥

—:o:—

३—विनय

दयानिधे जगदीश! मेरी विनती यही,
जो चाहो जग नाथ मुझे रखना अभी।
तो मैं माँगूँ जोड़ जुगल कर यह दया,
षट सम्पति-सम्पन्न रखो दाता सदा॥
प्रथम धर्म की टेक न टूटे प्राण से,
तन धन से प्रिय लगे और सन्तान से।
दूजी सम्पति शान्ति दया कर दीजिए,
मन का आतुर भाव प्रभो! हर लीजिए॥
सम्पति स्वास्थ्य अमूल्य दीजिए तीसरी,
जीवन मरण समान, बिना जिसके हरी!
चौथी, विद्या मिले बढावे ज्ञान को,
और सिखावे हमें आत्म सम्मान को॥
पंचम सम्पत्ति, अर्थकरी विद्या मिले,
भारत का दारिद्र शीघ्र जिससे टले।
छठवीं सम्पति नाथ कुशादा हाथ हो,
मन उदार निःस्वार्थ जगत के साथ हो॥

———

जब तक बनी रहे यह देह

(१)

चिन्ता में सान्त्वना मूर्ति बन जब मुझको देते हो धीर,
चञ्चलता के विषम ताप में जब बनते हो शान्त समीर।
घोर निराशा में आशा बन जब मेरे घर आते हो,
तप्त हृदय-तल पर जब मेरे शीतल जल बरसाते हो॥

(२)

नौका रूप दीख पड़ते हो विपद्-नीर-निधि में जब पास,
दया दृष्टि से खो देते हो जब मेरे मन के सब त्रास।
धो देते हो लज्जित होकर रोने पर जब पाप कराल,
हलका कर देते हो मानस अभयदान देकर तत्काल॥

(३)

तब जैसे प्यारे लगते हो, वैसे नित्य लगो प्यारे,
सुख विलास की चकाचौंध में नयनों से मत हो न्यारे।
गर्वित मत होने दो भ्रम वश कभी मुझे अपने बल पर,
हाथ तुम्हारा ही नित देखूँ प्रेरक देखूँ पल पल पर॥

(४)

जब मैं जटिल जाल में दुःख में फँस कर तुम्हें पुकारूँ नाथ!
पर तुम किसी मौज से मुझ पर धरो न निज करुणा का हाथ।
तब भी चित में भ्रान्ति न व्यापे लगा रहे चरणों में नेह,
माँगूँ यही दयालु! दान मैं जब तक बनी रहे यह देह॥

—:o:—

माता



(१)

जननी ! तेरी उपमा तुझ बिन तीन लोक में कहीं नहीं,
सागर की उपमा सागर बिन कभी किसी ने कही नहीं।
सामग्री रचना की जिस दिन प्रकृति कोष में भरी गई,
उसमें सार अमूल्य रत्न मातृत्व-कला ही धरी गई॥

(२)

विश्व विकाश रूप जननी है, है जननी जग जीवन-दा,
अण्डज, पिण्डज आदि सृष्टि की जननी ही है जन्म-प्रदा।
उत्पति, पालन विकट कार्य को जो न शीश जननी धरती,
कैसे इस आकाश गर्भ में मूर्ति जगत की लख पड़ती?

(३)

जग विस्तार मूल जननी है आदि शक्ति की आदि सुता,
है सब पूज्य समान मुझे पर तू विशेष मेरी माता।
मन में भी नव मास निरन्तर कौन मुझे था रख सक्ता?
पर तू ने सानन्द गर्भ में रखा सीप में ज्यों मुक्ता॥

(४)

ब्रह्मचर्य धारण कर तू ने मन इन्द्री सब दमन किया,
समुदित हृदय विकार बासना जान ज्ञान से शमन किया।
गमन किया शाश्वत स्वधर्म पथ सदाचार व्यवहार किया,
क्रोध क्रूरता लोभ गर्भ तज विनय शील आधार किया॥

(५)

वीरों का इतिहास पढ़ा आचार सुना सत् पुरुषों का,
धर्म धुरन्धर, कर्मवीर वर, देश-सुमन आदर्शों का।
यह अनूप व्रत मेरे ही कल्याण हेतु तू ने धारा,
जिससे जन्म जगत में जननी! प्रकटे मुझसे गुण सारा॥

(६)

काल कष्ट सम प्रसव वेदना को मुझसे ही पाया था,
पर सब से पहिले तू ही ने हर्षित हृदय लगाया था।
भूल गई सब शूल, जान खिल गया कमल का प्यारा फूल,
आशय रूप जलाशय में जननी! तेरे जीवन रस-मूल॥

(७)

मुझे पालते जननी! तू ने जैसा कष्ट कलेश सहा,
तीन लोक में बिन जननी जो कहे "सहा" वह मूढ़ महा।
कौन समूल त्याग सुख अपना मुझे सुखी पल पल करता,
आप ताप से तप कर तिल तिल कौन मुझे शीतल करता॥

(८)

तन मन धन तू ने मेरे हित तृण समान भी लखा नहीं,
अरी! कौन कटु फल विपदा का था जो तू ने चखा नहीं?
नहीं अन्न जल की चिन्ता की नींद नयन से दूर किया,
तनिक ताप रखा हित मेरे तू ने तप भरपूर किया॥

(९)

ग्रीष्म, शीत, वर्षा प्रकोप से क्षण क्षण मुझे बचाती थी,
व्यजन, वस्त्र, नव-छत्र आप ही मेरे हित बन जाती थी।
जब जब तू ने मुझे गोद में जननी! संग सुलाया था,
मीठी थपकी दे दे लोरी गा गा मुझे सुलाया था।

(१०)

वह सुख नींद स्वप्न में भी फिर मुझे आज तक मिला नहीं,
कलित कली वह सुख-विलास की कभी आज तक खिली नहीं।
मुझे सुषुप्त जान जननी! गृह कार्य विवश जो गई कहीं,
कमठ दृष्टि रखनी थी मुझ पर तिल भर भूली कहीं नहीं॥

(११)

कर से काम काज करती थी उर से रहती मेरे संग,
मानो हृदयस्थल से मुझ तक लगी हुई थी प्रेम सुरङ्ग।
पल भर भी तू ने जननी! उस समय कहाँ विश्राम किया?
मेरे ही सुख चिन्ता में रत सदा सुबह से शाम किया॥

(१२)

कभी पिलाया दूध सुधा सम कभी सुलाया लेकर गोद,
कभी तेल का मर्दन तन में, कभी रचा कुछ बाल विनोद।
अरे जननि! तू अटल प्राण पण से करती थी पालन प्यार,
पर मैं अधम तुझे देता था नित मल मूत्रों का उपहार॥

(१३)

वह भी अति विशेष जब दुख मय माघ पून की, हा जननी!
अर्ध-गता अति शीत प्रदा होनी अँधियारी थी रजनी।
शीतल जल कर से छूते मानो बिच्छू डँस जाता था,
तू धोती थी मलिन वस्त्र पर मुख प्रसन्न दिखलाता था॥

(१४)

उसको भी तू ने मानो सौभाग्य-चिह्न अनुमान किया,
घृणा कष्ट को तिल भर तू ने नहीं हृदय में स्थान दिया।
वार दिया तू ने मेरे हित अपने सब सुख संसारी,
विकट वेदना मेरे हित के हेत लगी तुझको प्यारी॥

(१५)

किसी समय जब मेरे तन में प्रकट हुई कुछ व्याधि बड़ी,
तब वो तुझको सारी दुनिया अन्धकार मय दीख पड़ी।
दाना पानी छोड़ रहा करती थी मेरे पास पड़ी,
आँखों से जल-धार बहाती ज्यों सावन की लगी झड़ी॥

(१६)

जो जिसने बतलाया तू ने मेरे लिये किया उपचार,
देवाराधन दवा दान सब तू करती थी चित्त विसार।
मन में कहती योग-सिद्ध कोइ पुरुष दया दिखला देता,
जो मेरे बच्चे को अपने तप से अमर बना देता॥

(१७)

गुप्त वासना मन की, तन की पीर सताती थी मुझको,
कह तो सकता था न हृदय की व्यथा रुलाती थी मुझको।
जननी! उस अज्ञान भेद को तुझ बिन कौन परखता था,
कौन द्रवित-चित करुणा-कम्पित हाथ शीश पर रखता था॥

(१८)

नाना युक्ति यत्न से मुझको कौन सान्त्वना था देता?
कौन प्रसन्न मुझे करने को विविध खिलौने ला देता?
तोता, मैना, काग दिखा कर कौन मुझे बहलाता था?
माखन मिश्री कौन चखा कर मन का ताप घटाता था?

(१९)

तू ही थी जननी! तुझ बिन यह करुणा, दया, शील किसमें?
इतना कठिन कलेश उठा कर पर दुख द्रवन नेम किसमें?
किसमें ऐसी अद्भुत ममता? किसमें ऐसा गूढ़ सनेह?
कौन किसी पर कर सकता है? जग में ऐसा निर्मल नेह॥

(२०)

आगे कोई ताप न व्यापे मुझे—यही चिन्ता करती,
दुनिहारी की कुटिल दृष्टि लग जाय न मुझे डरा करती।
इसी भ्रान्ति वश अभिमंत्रित बहु जन्त्र गले बँधवाती थी,
श्याम बिन्दु कज्जल का भी तू मेरे शीश लगाती थी॥

(२१)

जननी! सिर का काला टीका कण्ठ देश का यन्त्र अनूप,
माता की ममता के कैसे दिखलाते थे सुन्दर रूप?
तनिक उदास देख कर मुझको किस मन में होता था त्रास?
किस कर की ताली बजती थी? किसकी चुटकी मेरे पास?

(२२)

गीत मनोहर कौन सुना कर मुझे प्रसन्न कराता था?
कौन मधुर स्वर-यन्त्र बजाता? लट्टू कौन नचाता था?
होता था आनन्द किसे? जब मैं था विकसित हो जाता,
वह मैं भूल नहीं सकता हूँ तू ही थी मेरी माता!

(२३)

तू उत्सव त्योहार आदि में कैसा मुझे सजाती थी?
सोने की पुतली सी मेरी अद्भुत छटा बढ़ाती थी।
फिर चकोर बनती थी। जननी! मुझको चन्द्र बना करके,
विकसित हो जाती ज्यों नलिनी शशि के दर्शन पा कर के॥

(२४)

जननी! मेरी बाल-केलि में तू कैसा सुख पाती थी?
जिसको पीकर मदमाती सी सब दुख दूर बहाती थी।
मेरे वचन तोतले क्यों तू सुनती नहीं अघाती थी?
क्या तेरे हृत्सर में आकर प्रकृति सुधा बरसाती थी?

(२५)

कौन बतावे स्वाद भेद वह? तेरे बिन मेरी जननी!
जननी ही जाने तो जाने क्या जाने रवि-गति रजनी?
अपना ही अनिष्ट करने को जब मैं कभी मचलता था,
तू परिणाम सप्रेम लखाती मेरा क्रोध उबलता था॥

(२६)

नाना भाँति कुढ़ाता था मैं जननी! तुझे सता कर के,
पर तू ने कुछ दुख न माना विकसित मुझे मना कर के।
तेरे ऋण से अपना जननी! मैं कैसे उद्धार करूँ?
क्या ऐसी सेवा है जग में? जिससे प्रति उपकार करूँ॥

(२७)

वार धरूँ क्या वस्तु जगत की? अतिशय तुच्छ दिखाती है,
तेरे प्रेम पियूष धार में तृण समान बह जाती है।
जिस लाड़न से पालन कर के तू ने मुझको बड़ा किया,
अबल दशा से अपना बल दे इस दुनिया में खड़ा किया॥

(२)

बोल बताया, चाल सिखायी, वस्तु लखायी सब तू ने,
रहन सहन व्यवहार जगत का ज्ञान बताया सब तू ने।
धर्म कर्म का सत्पथ जननी! पीछे कौन बता सकता?
रूढ़ दशा में कौन मूढ़ नर मुझे मनुष्य बना सकता?

(६)

हो सकता है तन मन धन सब तेरी सेवा में लाऊँ,
पर वह भाव कहाँ से लाऊँ? ऋण-रसीद कैसे पाऊँ?
तुझ सा प्रेम पुनीत जगत में दिया ईश ने किसे बता?
प्राणों को भी तुझ पर वारूँ तो भी जान तुच्छ माता!

अबला-अपील



हे प्रणत पाल दयाल । कुछ कहव निज दुख हाल ॥
सुनि दीजिये प्रभु ध्यान । तुम विन न और ठिकान ॥
हम नारि अति बल हीन । विधि नाम अबला कीन ॥
स्वाधीनता अधिकार । नहिं मिल्यो प्रभु तव द्वार ॥
जग प्रकृति दुस्तर भार । सिर धरेउ अनिाह अगार ॥
पुनि आय जन्मी तहाँ । है भूमि भारत जहाँ ॥
जेहि देस की अस रीति । कछु काल तें विपरीत ॥
बनि नीच अबुध निकाम । रहतीं अनादृत वाम ॥
दै मुनिन को परमान । यहि भाँति कहहिं अजान ॥
नारी नरक की खान । इनको तजे कल्यान ॥
इनको करे विश्वास । सो लहै जग बहु त्रास ॥
जो अमिय जान लुभाहिं । तो पाय विष मरि जाहिं ॥
पशु ढोल शूद्र गँवार । तिय ताड़ना अधिकार ॥
यह झूठ ते निस्तार । केहि भाँति पाव गँवार ॥
कर्दम, पराशर, चवन । सान्डील, शृङ्गी, जवन ॥
मुनि व्यास जग विख्यात । सब कहत हरि साक्षात ॥
अत्री, वसिष्ठ, कणादि । भृगु, गर्ग गौतम आदि ॥
रहे कौन मुनि बिनु नार । जिन कियो नहिं तिय प्यार ॥
नहिं नारि होतीं भौन । मुनि वृन्द जनतीं कौन ॥
जेहि भवन नहि तिय वास । सब कहत प्रेत निवास ॥
श्रुति बार बार पुकार । अस कहत निज मति सार ॥
तिय सुभग फलदातार । कामार्थ धर्म अधार ॥
जेहिं भवन भामिनि वृन्द । आदर न पाव अनिन्द ॥

तहँ विदित तीनों ताप । कुपि देति लक्ष्मी शाप ॥
तेहि तियन को अपमान । निगमागमैं न प्रमान ॥
यह नई रीति अनीति । मुनि-मत न श्रुति नहिं नीति ॥
अति कुबुध मूरख लोग । नित मति रचो यह ढोंग ॥
निन्दहिं तियन दै तान । निज दोष नहिं पहिचान ॥
रखि तियन को तम माहिँ । विद्या पढ़ावत नाहिं ॥
गुन ज्ञान धर्म सुनीत । मन बुद्धि करहिं पुनीत ॥
तिन की न शिक्षा देहिँ । तिय को,अजस सिर लेहिं ॥
जैसे बँधे घर ढोर । तस नारि हू इक ओर ॥
यहि सृष्टि को कुछ हाल । नहिं जानती बहु बाल ॥
यहि देस को क्या नाम । जन्मीं जहाँ ये बाम ॥
पूछहु जो उनसे जाय । मुँह ताकतीं मुसक्याय ॥
श्रुति विदित नारी धर्म । तिन कर न जानहिं मर्म ॥
अस जहाँ अत्याचार । लह कस सुलक्षण नार ॥
फिर दोष उनका कौन । आरोपहीं सठ जौन ॥
निज नैन पट्टी बँध । नहिं देखते खल अंध ॥
जहँ नारि शिक्षा रीति । बुध रची जान सुनीति ॥
सो देस कैसे आज । जनु विश्व के सरताज ॥
सुख, सभ्यता, सत नीति । धन,धान्य, विभव, विभूति ॥
जग मगत चहुं दिशि जोति । जस इन्द्र पुर में होति ॥
प्रभु दीनबन्धु दयाल । यहि देस कर अस हाल ॥
हम नारि वर्ग समूह । दुख सहत अति प्रत्यूह ॥
अजहूं दया उमगाय । हरि मूढ़ता, समुदाय ॥
दीजे हृदय अस ज्ञान । जेहि पुरुष होहिं सुजान ॥
पहचानि अपनी भूल । तजि टेक दुख को मूल ॥
निज बालिका प्रिय मान । दें तिन्हहिं विद्या दान ॥

अबला सुधार विचार। नित रहैं हिरदय धार ॥
नारी सुधरि जब जाहिं। नर हू रहैं सुख माँहि ॥
नहिं तो चला यम धाम। भूखण्ड भारत नाम ॥
यह मूजिबात अपील। लिखी बैजनाथ वकील ॥
नहिं मिहनताना लीन्ह। बस मुफ़लिसी लिख लीन्ह ॥

हमारा भारत

ग़ज़ल

सारे भुवन का भूषण भारत वतन हमारा।
हम सब भ्रमर हैं इसके यह कंजुवन हमारा ॥
विधि ने इसे बनाया मुखरूप विश्वभर का।
आदर्श है जगत का भूतल-रतन हमारा ॥
वह शैलराज दिग्गज उत्तर खड़ा है मानो।
ब्रह्मा का सन्तरी है, करता जतन हमारा ॥
नदियाँ अनेक, झीलैं अगनित तलाव लाखौं।
जिनसे बना है नन्दन-बन सुख सदन हमारा ॥
स्वाद औ' सुगन्धवारे, फल फूल अन्न सारे।
तिन से भरा पड़ा है, भूखण्ड बन हमारा ॥
घी, दूध, तेल, शक्कर, षट्रस व राम रस भी।
ऊनो कपास, रेशम, अलसी, व सन हमारा ॥
बूटी, जड़ी, व औषध अमृत व विष सभी कुछ।
केसर, कपूर, चन्दन मङ्गल करन-हमारा ॥
शोरा, विचित्र सज्जी, बहुछाल, खाल, कैला।
उप धातु, अष्टधातू, औ' नौ रतन हमारा ॥

किस देश को मुयस्सर हैं स्वप्न में भी ये सब।
जी चाहे जिसका खाले पर आदिधन हमारा॥

सत, सभ्यता, सुविद्या, सद्गुण, सुनीति, सतपथ।
सब ने यहीं से सीखे चेला भुवन हमारा॥

भूगोल भर में देखो आँखें पसार अपनी।
भारत है विश्वपोषक सच्चा वचन हमारा॥
कहती है मातृ भूमी, अद्भुत उदार शीला।
"विश्वोपकार के हित संकल्प तन हमारा॥

सन्तान सब दुखी हैं बिन अन्न जल हमारी।
कंगाल हो गया है यद्यपि भवन हमारा॥
पर जो न अन्न मैं दूँ भूखों मरें विदेशी।
आहार जग को देना अविचल है प्रन हमारा॥"
धनि धन्य मातृ-भूमी महिमा कहूं कहाँ तक।
तेरे प्रताप से जग कृत-कृत्य जन हमारा॥

शत, शत, शताब्दियों से दुर्दैव दुष्ट पापी।
सब भाँति कर थका है नखशिखदलन हमारा॥
पर मातृ भूमि, तूने कैसे बचा लिया है—
यह आर्य-जाति-गौरव औ' कुल वरन हमारा॥

भारत नहीं किसी का, हम इसके यह हमारा।
इसकी ज़मी हमारी इसका गगन हमारा।
दी जान पूर्वजों ने इस जन्म-भूमि के हित।
संसार जानता है विख्यात रन हमारा॥

हे ईश शेष-शायी वह दिन है याद जब तुम।
कहते थे औध, मथुरा, गोकुल, भवन हमारा॥

इस देश को मिटा कर क्या यश तुम्हें मिलेगा।
किस को भला कहोगे यह चरित-बन हमारा।
युग पाणि जोर विनती है बैजनाथ की यह।
फिर जन्म दो तो भारत होवे सदन हमारा ॥

१—लोरी

प्यारे बच्चा! सोजा, सोजा। सुख की निंदिया तेरी हो जा ॥
हँसता उठै पुकारे "मैया"। बलि जाऊँ अरु लेऊँ बलैया ॥
मुँह चूमूँ औ' गोद बिठाऊँ। तुझे अमृत सम दूध पिलाऊँ ॥
दूँगी छोटे बड़े खिलौने। हाथी घोड़े बन्दर बौने ॥
मक्खन मिसिरी खाँड़ खिलाऊँ। गोरस ताजा तुझे पिलाऊँ ॥
तू ऋषियों की है सन्तान। जिसका जग में गड़ा निसान ॥
है ऋषि रक्त भरा रग रग में। परम पवित्र-अनूपम जग में ॥
आर्य वंश का तू है ढोटा। जगज्जात सब जिनसे छोटा ॥
कपिलदेव, गौतम, पातञ्जल। व्यास, कणाद, गर्ग, मुनि-शाण्डिल ॥
जयमुनि भृगु औ' भारद्वाज। अत्रि, अंगरादिक ऋषिराज ॥
और अमित विख्यात मुनीश। जिनको जगत नवाता शीश ॥
जिनकी रची सुविद्या ध्याय। होता चकित विश्व समुदाय ॥
रघु दलीप हरिचन्द महीश। शिवि, दधीच, पृथु यदु अविनीश ॥
अर्जुन भीम युधिष्ठिर बीर। करण द्रोण भीषम रण-धीर ॥
तेरे ही पुरुषा थे प्यारे। भारत-जननी-सुवन दुलारे ॥
जिनका बल-विक्रम-विस्तार। कहत न पावै शारद पार ॥
उदय अस्त लों उनका राज। उनको कठिन नहीं कोई काज ॥
धर्म धुरन्धर सत ब्रतधारी। परम उदार जगत हितकारी ॥
शूर-शिरोमणि सदा कहाते। कभी न रण में पीठ दिखाते ॥

सिंधु बीच जिन बाँधा सेतू। विदित राम हैं रघुकुल केतू।
(कहती कहती हुई अधीर। बेटा उठै कलेजे पीर॥)

भारत भू देवी सुन बेटा। जिसकी गोद बीच तू लेटा॥
तेरे पुरुषों की है माता। हम सब की है अन्न जल दाता॥

सुजला सुफला सुन्दर देवी। जगत पूजिता सद्गुण सेवी॥
उनको थी यह अतिशय प्यारी। जन्म-भूमि महिमा जगभारी॥

तू भी इससे करना प्रेम। यही सदा सुजनों का नेम॥
अब तू इनका नाम निशान। तुझ पर निर्भर उनका मान॥

बेटा वही सपूत कहावै। जो पुरुषों का नाम चलावै॥
पढ लिख कर पण्डित हो जाओ। देश देश की विद्या लाओ॥

शिल्प कला के सीखो अङ्ग। यन्त्र बनाओ रंग बिरंग॥
करि व्यायाम सुबल-विस्तार। शूर वीर बन साहस-धार॥

बनिज करो धन खूब बढ़ाओ। खेती करो धान्य उपजाओ॥
दरिद्रता पहिले कर दूर। अन्न धन जन से हो भरपूर॥

नीति धर्म में बनो अडोल। फिर जग में हो वाला बोल॥
आर्य जाति का दीपक बालो। दुख दारिद्र यहाँ से टालो॥

तुम पर मातृ-भूमि की आशा। कभी न होवे उसे निराशा॥
सुअन सुनो भारत जननी के। भाई बहिन जानना नीके॥

सब विधि उनसे प्रेम बढ़ाना। भारत बेड़ा पार लगाना॥
"बैजनाथ" गावै यह लोरी। सोते समय जगाने को री॥

२—लोरी

आ मुनुआँ, इक लोरी गाऊँ, ज्ञान सिखाऊँ, नींद बुलाऊँ।
खेल कबड्डी कूद कुदान, पड़ो गिर दौड़ो मैदान ॥
खेलो गेंदा मारो टाँड़, फाँदो उछलो बाँधो फाँड़ ।
धूल लगाओ कर लो डण्ड, बनो शूर रणवीर प्रचण्ड ॥

गुण सीखो, देखे संसार, आदर पाओ औ' सत्कार।
मक्खन मिस्री खीर पुलाव, मोटा झोटा सब कुछ खाव ॥
बाला, माला, कंठा, गाप, तेल फुलेल, लविन्डर, सोप ।
हरा, लाल, पीला, चटकीला, गोटा, पट्टा वस्त्र रंगीला ॥

यह सब कभी न अङ्ग लगाओ, बिटियों का मन रूप बनाओ।
मर्दों की शोभा हथियार, गुण विद्या उनका शृङ्गार ॥
सदाचार चित्त में नित धारो, आर्य जाति का धर्म विचारो ।
सच बोलो यह बड़ा धर्म है, झूठ बोलना पाप कर्म है ॥

शील बड़ों की बड़ी निशानी, यही बढावे कुल का पानी।
दया सकल धर्मों की माता, जग यश देइ अन्त जग त्राता ॥
छमा छत्र जब सीस बिराजै, कलह बैर खल देखत भाजै।
सदा रखो सन्तोष चित्त में, सुखी रहो प्रभुदत्त वित्त में ॥

कभी आलसी बनो न भाई, आलस नहिं सन्तोष कहाई।
पर उपकार देइ यश जग में, तन धन समय लगै यह मग में ॥
सदा देस की करो भलाई, देस-सुधार मूल मनुसाई।
जिनको देस, समाज न प्यारा, जन्मा व्यर्थ भूमि का भारा ॥

लोभ लहर में कभी न डूबो, भारी बेड़ी इसको बूझो।
यही सिखावे हिंसा चोरी, घात करावे मित्रन को री॥
क्रोध पाप का मूल कहावे, आप नसे अरु आन नसावे।
डाह कभी मत मन में आनो, चित का कालिख इसको जानो॥

हृदय जला कर करे सियाह, छिन २ मुँह से निकले आह।
जिसको बैर कलह की बान, उसको निर्भय कभी न जान॥
वह नर शान्ति कभी नहिं पावे, खटके में दिन रैन गवावें।
नारी नहीं नीति से ख़ाली, रट लो बहिनो बच्चों वाली॥

—:o:—

बच्चा

सो उट्ठा है प्यारा बच्चा जैसे नव विकसित अरविन्द।
माता का मुँह ताक रहा है माता भी उसका मुख चन्द॥
झुकी हुई नन्हें के मुँह तक प्रेम छन्द कुछ गाती है।
जैसे भ्रमरी खिले फूल पर अपनी बीन बजाती है॥

माता का वह लालन लख कर रह रह कर मुसकाता है।
मानो खिल खिल मञ्जु कञ्ज फिर सम्पुट हो हो जाता है॥
भोला भाला सुन्दर लाला कभी सुनाता है हुङ्कार।
कभी परस कर कोमल कर से करता है अम्मा को प्यार॥

ठुमक ठुमक कर फैलाता है हाथ गोद में आने को।
ठुनुक ठुनुक कर बिन बोले कहता है दूध पिलाने को॥
धन्य प्रकृति है तेरी महिमा कौन बतावे वारापार।
इस असार में सार लखाना है तेरा ही अद्भुत कार॥

आज नहीं कल

मानव उन्नति के मग में इक कपटी ठग नित रहता है।
उस पथ के पथिकों से वह यों कान में झुक झुक कहता है॥
अजी अभी यह काम टाल टुक दिल बहलाओ चैन करो।
आज नहीं कल कर लेना मत काम काम रट मुफ्त मरो॥

दुनिया के सब काम नित्य के किससे नित्य सपड़ते हैं।
घड़ियों में होने वाले भी पड़े महीनों सड़ते हैं॥
तन को तोड़ो, आँखें फोड़ो, दिल दिमाग़ का नाश करो।
होगा वही लिखा जो विधि ने सदा उसी की आश करो॥

इसी तरह बहका करके वह मटिया मेल मिलाता है।
बड़े बड़े उत्साही जन को सब्ज़ बाग दिखलाता है॥
इस जग में कितने कणाद औ' कपिलदेव गौतम होते।
जो इस ठग के फन्दे में वे समय सम्पदा नहिं खोते॥

इस कराल कपटी ने जिसको "आज नहीं कल" सिखलाया।
जानो उसे रसातल में इस खल ने छल कर पहुँचाया॥
ख़बरदार प्यारी बहिनो यह गुप्त चोर है ख़ूब लखो।
समय-रत्न का यह तस्कर है धैर्य्य-पाहरू संग रखो॥

फिर इसको बेताल समझ कर जब आवे तब "थू" कर दो।
और पढ़ो यह महा मन्त्र फिर मुँह पर उसके "छू" कर दो॥
"आज करन्ती अभी करूँगी काल्ह करन्ती आज।
भाग भाग रे प्रेत महा खल पापी आलस-राज॥"

—:०:—

समय को समालोचना

हम तुमसे पूछेंगे बहिनो तुम समय काल जो सुनती हो।
नो इसकी समालोचना क्या है कभी इसे भी गुनती हो॥
यह अविरल समय-समुद्र-प्रवाह किसी के रोके नहिं रुकता॥
इक पल जो इसका बीत गया नहिं मिलता मनो दिये मुक्ता॥

यह काल परिन्दा पक्षी है हरदम उड़ता ही जाता है।
तिल भर इसकी गति रोक सके कोई वीर नजर नहिं आता है॥
क्षण क्षण को हीरालाल समझ कर व्यर्थ इसे तुम मत खोओ।
इस काल चक्र में बने सो कर लो गहरी नींदें मत सोओ॥

इस काल क्षेत्र में कर्म-कृषक जैसा ही बीया बोता है॥
वैसा ही फल उस बीज बेल में फल कर दर्शित होता है। ।
विषबीज अगर विष फल फलता शुभ बीज अमर शुभ फल प्यारा
कुछ खेती करो सुकीर्ति बीज से बिन कर मिलो काल क्यारी॥

बस किया यहीं कृषि कर्म अमर जग में सीता सावित्री ने।
जो अब तक उनकी विमल कीर्ति गाते फिरते हैं जने जने॥
कितने दिन बीते सीता औ, सावित्री को शुभ कर्म किये।
वह काल भगा अब कहाँ २ यह कीर्ति विचारो तनिक हिये॥

पर जब जब उनको कीर्ति कथा हम लोग कान से सुनते हैं।
तब तब सुकीर्ति की दिव्य छटा मानो सन्मुख हम गुनते हैं॥
इतिहास जीवनी-दर्पण में प्रतिविम्ब नजर जो आता है।
वह उन्हीं कीर्तियों ही का है जो कर्म वीर कर जाता है॥
जो क्षण में होता भंग कहो उस तन की आस भला क्या है।
जो करना है वह आज करो कल का विश्वास भला क्या है॥

यह काल कौतुकी सूत्रधार जग इसको नाटक शाला है।
ऋतु छहों नवेली नटी रंगीली साल पखाउज वाला है॥
हैं पल,क्षण,घड़ियाँ,दिवस,महीने,सखासखी इस नट-दल के।
जो थोड़ा थोड़ा नाच नाच कर छिप जाते हैं टल टल के॥

पर छहों छबीली कुछ जम जम कर छम छम नाच दिखाती हैं।
तब साल पखावज वाले से बस एक ताल दिलवाती हैं॥
जो दर्शक बैठे शाला में उनको यह तान सुनाती हैं।
दिल खोल के दरस लाभ ले लो हम लोग अभी घर जाती हैं॥

यह मत सोचो हम जाती हैं तो नई छबीली आवेगी।
वह आवेगी भी तो मालूम नहीं क्या कला दिखावेगी॥
रम्या वह तुम्हें सुधा होगी या विषरस काल-प्रदा होगी।
जो अभी लाभ लेना हो लेलो प्यारे कर्म वीर योगी॥

मैं और भ्रमरी

तू पद्म-प्रेमिनी बन कर भ्रमरी फूल फूल का रस चखती।
तू प्रेम प्रणाली लांछनि है प्रेमाभिमान तू क्यों रखती॥
इस प्रेम पवित्र देव को तू ने घृणित उपास्य बना डाला।
बस इसी पाप से कलुषित कामा! तेरा अङ्ग हुआ काला॥

यह पीला सा धब्बा* जो तेरी गर्दन पर दिखलाता है।
वह गूढ रहस्य कलंकित कीरति का तेरे दरसाता है॥

---

*इस कविता में भ्रमरी की गर्दन पर जो पीला धब्बा है वह प्रेम की कला का चिह्न है जिसका पीला रङ्ग होता है सबूत यह है कि प्रेम के प्रभाव से प्रेमी का मुँह पीला हो जाता है। इससे प्रेम कला का रङ्ग

हैं कला प्रेम की पीत वरन, प्रेमी मुख-द्युति बतलाती है।
वह मंगल मूर्ति कला तुझ से अपमान निरन्तर पाती है॥
सग्लानि वही तव तन रूपी कालीदह की तह जाती है।
उसकी ही ललित ललाट झलक कुछ २ बाहर दिखलाती है॥

क्या मधुकरि! तूने पाठ प्रेम का सात समुन्दर पार पढ़ा।
लग गयी विदेशी हवा तुझे भी भारत की जन्मी रम्भा॥
क्यों आर्य रमणियों से मिल तूने प्रेम समस्या नहिं हल की।
जो और नहीं तो पढ़ लेती पुस्तक दमयन्ती औ, नल की॥

या सीता की, सावित्री की, या रतन सेन की नारी की।
जयचन्द्र सुता पृथिराज-प्रिया या सती-रत्न गान्धारी की॥
है आर्य रमणियों सा पति-प्रेमादर्श कहाँ भूमण्डल में।
पति जीवित प्रेम पियूष पिये बिछुड़े तन भस्म करें पल में॥

—:o:—

भारत—सन्देश

उठ जागो, भारत महिलाओ, अब भोर हुआ संसार जगा।
तम घोर अविद्या-रजनी का, मिट गया ज्ञान का भानु उगा॥
भू मण्डल में है धूम मची, सब आप आप को चौकस हैं।
कोइ हमसे आगे बढ़ न जाय, सब लगे इसी धुन में बस हैं॥

पीला कहा गया है। वह प्रेम की मंगल-मूर्ति-कला भ्रमरी के अनिष्ठ प्रेम व्यवहार से अपमानित होकर भ्रमरी के काले शरीर रूपी दह में ग्लानि से डूबती जाती है। अब तो डूब चुकी है केवल ललाट पर उसका कुछ झलक बाहर से दिखाई दे रही है।

—लेखक

पर अमरीका, जर्मन फिरांस, इङ्गलैंड जगत से कहते हैं—
"हम उन्नति पथ के चपल मुसाफ़िर सब के आगे रहने हैं ॥
संसार हमारा आश्रित है, पर भारत है सब से बढ़ कर।
सूई तक जब हम देते हैं, तब सीता यह अपना गूदर ॥

है हमही सभ्य, साफ़ हमही, हम उद्योगी व्यवसाई हैं।
है शेष जगत सब दनुज, मनुज हम योरप के ईसाई हैं ॥
अब अशन,वसन,फ़ैशन, फरनीचर,—सभी हमारा भाता है।
अनि हाव भाव बर्ताव हमारा, जग को सदा लुभाना है ॥
है खेल कूद में भी देखो, विज्ञान कलादिक भरे हुए।
सब भद्दे खेल जिहालत के, हैं पड़े किनारे धरे हुए ॥
है रहन सहन में उज्ज्वलता, औ, गृह-प्रबन्ध में चमक दमक।
क्या शुभ्र समाज प्रणाली है, क्या रीति रस्म से विमलझलक ॥

हम सुना वहू पत्नी को अपने बढ़िया नाच सिखाते हैं।
फिर मधुर सिखा कर गान, मोहनी-मूरत उन्हे बनाते हैं ॥
हम ललित युक्ति से बड़ा बड़ा, हम लोग अर्थ सुलझाते हैं।
नित हाव भाव औ' सुन्दरता, का अचरज मूल्य बढ़ाते हैं ॥
सुन्दर घर वर कन्याओं को, इसकला कुशलता से मिलता।
जो दख लुभाया एक बार, फिर फसा कहाँ वह है टलता ॥
हम बुद्धि बलसे भुज बल जीतें,औ'कल-बल चिन कर काम करें।
ले मूल मसाला औरों से, गढ़ गुढकर अपना नाम करें ॥
रुई, रेशम, सज्जी, चमड़ा, औ, खनिज दूसरे देशों से।
लें सहज दाम में मोल, जिन्हें ये पैदा करें कलेशों से ॥
फिर तन बुन कर रचि रंग रँगा कर सुन्दर बस्तु बनाते हैं।
तब उन्ही विदेशी लोगों से, दस गुना दाम चुकवाते हैं ॥

हैं बिजली, वायू, व्योम, वारि, औ' वन्हि सकल मेरे बस में।
यूरप वसुन्दरा के हम अधिपति, शेष मेदनी भी कस में ॥"
अब भारत क्या कहता,है सुन, लो, धीमी धीमी बोली में।
है रोग ग्रस्त शोकाकुल रोता जैसे पड़ा खटोली में॥

"अब हाय हाय क्या करूँ विधाता, किससे अपनी पीर कहूँ ॥
हा कब तक अंग अंग को पीड़ा, लगातार दिन रैन सहूँ ॥
अब जला गला सब रक्त मांस ठठरी भर तन में बाकी है।
तिस पर भी सदमे नित्य नये, जो मुँह खोलूँ गुस्ताखी है॥

हे दीनबन्धु! क्या दिन दिखलाया,क्या से क्या मेरी गति की।
सब से ऊँचे पर बिठा मुझे अब, सब के चरन तले धर दी॥
हमहीं थे जग में सभ्य शिरोमणि,विद्या,बल, धन,धर्म धनी।
पर अब हमको वे हँसते हैं, जो कभी रहे थे पशु-श्रेनी॥

जिन आचरणों को घृणा दृष्टि से देख देख "छी"कहा किये।
अब उन्हीं कलाओं के अभाव से, हम असभ्य हैं कहे गये॥
क्या काल चक्र की कठिन चाल है, विधना कैसे खेल करे।
कल घूर लगे थे जिस घर में,अब उसी महल में रत्न भरे॥

जो भवन रत्न का खान बना था, आज वहाँ कूड़ा करकट।
परिवर्तन कला प्रकृति की कैसी काम करे अद्भुत चटपट॥
पर ये दिन मेरे क्यों बिगड़े हा, कहते दिल भर आता है।
औ' पीर कलेजे में उठती है, शोक सिन्धु लहराता है॥

मेरे उस दुष्ट सुअन दुर्योधन ने ही मेरा नाश किया।
प्रिय पाण्डव धर्म धुरन्धर मेरे पुत्रों से हठ कलह रचा॥
बस उसी समय सन्तान शिरोमणि मेरे मटिया मेल हुए।
उस युद्ध क्षेत्र में धर्म समझ कर तन तजि सब सुरलोक गये।

नाना विद्या, नाना पौरुष, नाना गुण मय बुधिबल धारे ॥
प्राचीन, ज्ञान, विज्ञान कला के वेत्ता सभी गये मारे ॥
हा जिस उन्नति का सूर्य सुतों ने सदियों में चमकाया था।
जिस ब्रह्मचर्य्य के तप बल से वह अद्भुत तेज बढाया था ॥

स्वर्गीय धर्म वह शौर्य अलौकिक विशद नीति विज्ञान कला।
अद्भुत गुण विद्या शिल्प निपुण जैसा उनने था फैलाया ॥
वैसा अब तक भी कहो भला किस सभ्य देश ने है पाया।
पर हा जगदीश ! कठिन तेरी गति विकट अगम तेरी माया ॥

वे सब विद्याएँ लोप हुई औ' साथ पढ़ाने वाले भी।
कोई भी ऐसा नहीँ बचा जो उनको तनिक सँभाले भी ॥
फिर ऐसी विपदा आने पर जो हुई न वह कैसे होती।
दुर्भाग्य अधोगति वीज समय पाकरके कहो न क्योँ बोती ॥

बस उसी समय से अवनति की दृढ़ ध्वजा हमारी छाती पर।
फहराती हैं दिन रात सुनो यह शोक कथा मेरी चित धर ॥
यदि पूछो होना था जो कुछ वह बीत गया अब बतलाओ।
अब कैसे तेज तुम्हारा फिर भी बढ़े युक्ति वह दरसाओ ॥

तो उत्तर भी उसका सुन लो बस एक यतन है जान रखो।
मातायें मेरी अवनी पर पहली सी हों तो सब कुछ हो ॥
जब माताएँ गुण विद्या से, सब भाँति सुशिक्षित हो जावेँ।
तब पुत्र पुरातन बल, विद्या, औ' धर्म, धीरता सब पावेँ ॥

फिर जैसे जल्दी बिगड़ा था, वैसे ही जल्दी सुधर चले।
संसार देखता रह जावे फिर, ज्योँ की त्योँ यश ज्योति बले ॥
नहिं धर्म हमारा कच्चा है, नहिं रहन सहन की रीति बुरी।
नहिं खान पानमें कोर कसर, नहिं रस्मों की है नीति बुरी

पर विगड़ा जो कुछ है वह यह, हम नियम सभी का भूल गये।
वह रीति, रस्म औ' धर्म कर्म हैं उलटे पुलटे बरत रहे॥
हम समझ बूझ कर आज सुधारें तो सब ठीक नज़र आवे।
जो भद्दापन है आन मिला, वह मिट कर निर्मल हो जावे॥

जाकर महिलाओं से कह दो, मुझ भारत का सन्देश ज़रा।
बस आस तुम्हीं पर लगी हुई है, रो देखा सब से दुखरा॥
छाती पर अपनी रख करके, हमने नित तुमको पाला है।
कुछ सेवा करो दया कर नहिं तो भारत काल हवाला है॥

बहू का विलाप

यह इक वधू का सास से सम्बाद है सुन लीजिए,
सुन कर समाजिक दुर्दशा पर ध्यान अपना दीजिए।
"हे सासजी! जब मातृगृह से मैं विदा होने लगी,
तब स्नेहमूर्ति सुमात के मिलमिल गले रोने लगी।

फिर विलप कर कंपते हुए स्वर से लगी कहने कि माँ!
इस बालपन में निठुर बन का कर रही हो क्यों जुदा?
तव सरल करुणाकर हृदय पाषाणमय क्यों हो गया?
दासी से ऐसा क्या हुआ जो प्रेम तेरा खो गया?

जननी वही मैं हूँ तेरी प्राणों से भी प्यारी लली,
'जिसको कहा करती थी 'जीवन-मानसर मुक्तावली'।
पल भर जिसे दृग दूर रखना था तुझे कैसा कठिन,
जैसे तड़पती मीन सूखे सर, विकल हो, वारि विन।

मेरा मलिन मुख मात जब तू देख लेती थी ज़रा,
चिन्ता भरी ले गोद में मुख चूम यों बदती गिरा—
'तेरे गुलाबी गाल पर क्यों यों उदासी छा गई ?
मैं वार दूँगी प्राण जो तिल भर भी तू दुख पा गई।

मन मैल तज, हिय हर्ष कर, हृद-नन्दनी प्यारी लली,
हँस दे तनिक चन्द्रानने ! खिल जाय नलिनी की कली।'
जब सूर्य निकले प्रात सो जाती थी मैं कुछ देर तक,
आकर के सिरहाने मेरे तब तू दिखाती थी झलक।

अति प्रेम पूरित मधुर स्वर से तू जगाती थी मुझे,
औ' विमल सत् उपदेश हितकर यों सुनाती थी मुझे,—
"उठरी मेरी प्यारी लली ! यह समय सोने का नहीं,
ऐसा मनोहर दृश्य फिर अब आज होने का नहीं।

मुनिवर गये है यों बता जो प्रात जगते है सदा,
घटती नहीं उनकी कभी संसार में सुख सम्पदा।
उठ तो अरी बिट्टो ! मेरी हँसती हुई आमोद से,
कर नित क्रिया, मुह हाथ धो, मिलजा हमारी गोद से।

मैं झट कटोरा भर पिला दूँ दूध ताज़ा प्यार से,
आजाय तन में तेज जिसकी शक्ति के संचार से।'
यदि खेल में उलझी रहा करती थी मैं सब भूल कर,
तब समय भोजन का निरख तू ढूढती आती उधर।

पीछे से मेरे शीश पर रख हाथ मृदु मुसक्यान कर,
कहती थी, जब मैं हर्ष ध्वनि करती तुझे पहचान कर,
'मुन्नी भला इस खेल में मिलता तुझे क्या स्वाद है ?
खाने तलक की सुध नहीं तुझको न उसकी याद है।

नित देर कर खाती है तू दिन देख कितना आ गया,
लख तो गुलाबी गाल तेरा किस तरह मुरझा गया।
अब भी तो चल, फिर लौट कर यह खेल तुरत सम्हाल ले।
रोटी बनी तैयार है दो ग्रास मुंह में डाल ले।'

जब स्वास्थ्य-नियम उलंघ कर बीमार होती मैं कभी,
तब मात तू भी त्याग देती अन्न, जल, निद्रा सभी।
फिर रात भर बैठी किया करती थी मेरी खाट लग,
मुझसे दवा खाने की विनती देव आराधन अलग।
जननी ! तेरे सौ सौ जतन सयम कठिन उद्योग से,
बचते थे मेरे प्राण ज्यौं त्यौं उस भयकर रोग से।
तब तू कहा करती पड़ोसिन पूछती थीं हाल जब,
'बहिनो, दिया है दान फिर भगवान ने लल्ली का अब।'

त्यौहार आने से प्रथम चिन्ता मेरी करती थी तू,
सब वस्त्र भूषण साज कर मेरे लिए धरती थी तू।
फिर पर्व के दिन भोर ही से ले मुझे सानन्द चित,
शृङ्गार कर प्रति अङ्ग की शोभा बढ़ाती थी अमित।
तब सामने करके खड़ी चिन्ता-सकल-संत्यक्त हो,
इकटक निरखती थी मुझे तू मात प्रेमासक्त हो।
कहती थी सब से, 'बस मेरा त्यौहार पूरा हो गया,
संसार का दुख द्वन्द सारा आज उर से खो गया।

विद्या पढ़ा कर ज्ञान का भी दान पूरा दे दिया,
पशुतुल्य जीवन मूर्खता के दोष से वंचित किया।
सद्गुण सकल जिनसे निरन्तर नारियों का है भला,
सीना-पिरोना, चित्रकारी, पाक की सारी कला,

गाना-बजाना, गृह-प्रचर्या, बालरक्षा की क्रिया,
कर प्यार मुझको सहज ही सब खेल में सिखला दिया।
कितनी सुनाऊं मैं सुजननी सुयश की तेरी कथा,
नित प्रानपन से है किया निष्काम मम पालन यथा।

फिर वह दयामय, प्रेममय, कोमल कमल से भी हिया,
जननी बता क्यों कुलिश से भी आज कर्कश हो गया।
लखती नही अब क्यों उसी उर में हमारी आपदा,
जो इक अपरिचित धाम में करती हो तुम मुझको विदा।

अम्मा! शरण में रख मुझे, कैसे वहाँ जाऊँगी मैं,
तू ही बता तुझसी भला अम्मा कहाँपाऊँगी मैं।
ऐसी दयामय कौन माता मर्म मन का जान कर,
क्षण क्षण मुझे सन्तोष देगी प्रीत उर मे आन कर।

दिन रात पल पल कौन मुँह जोहेगी मेरी अम्बिका,
दुख, दर्द, चिन्ता, शोक में होगी मेरी अवलम्बिका।
मेरा मचलना रूठना भी मोदप्रद होगा किसे,
अविनय कुटेव कुवचन तक मेरा सुखद होगा किसे।

तुझसी उदार सुशील जननी कहु कहाँ से आयगी,
जा भूल, चूक, अनथ आदिक सब क्षमा कर जायगी।
वह कौन होगी मात जो दृग पुतलियों सी सर्वदा,
रक्षा मेरी करती रहेगी प्रेम पलकों में छिपा।

बेटी पराई दूसरे घर कब भला होगी सुखी,
किसको पड़ी है जो मेरे दुख दर्द से होगी दुखी।
तुझ बिन भला अम्मा मेरो सुख शान्ति सब दूर जायगी,
विश्वास कर जननी वहाँ लल्ली तेरी मर जायगी।

शंकित हृदय उद्गार आरत विनय करुणा में पगी,
सुन स्नेह शोक विकल सुजननी फूट कर रोने लगी।
उर से लगाकर फिर मुझे कातर हृदय बोली विकल,
'तेरी दशा यह देख मेरे प्राण जावेंगे निकल।

हा क्या ! करूँ ? बच्ची ! सनातन विधि विधान यही रहा,
दुहिता-वियोग-प्रदाह दारुण सदा जननी ने कहा।
इतना अधीर न हो प्रिये कुछ धीर धर, हिय ज्ञान कर,
भर्ता-भवन भामिन भलाई कह गये मुनि मान्यवर।

यह कौन कहता है ?—वहाँ माता नहीं तू पायेगी,
या उस अपरिचित धाम में जाकर के तू घबरायेगी।
प्राणेश की माता तेरी जननी भी है सुन बावली,
पावेगी उसमें तू प्रिये मेरी सी सब बिरदावली।

सब भाँति वह चिन्ता तेरी करती रहेगी रात दिन,
तिल भर भी उसको भूल कर मुझसे किसी विधि कम न गिन।
सुन मात की शीतल, सुखद, सन्तोष प्रद बानी विमल,
उत्कृष्ट अति उद्विग्नता उर से गई मेरी निकल।

बढ़ती हुई मेरी निराशा-क्रान्ति उर से खो गई,
शोकाग्नि मातृ-वियोग की भी शान्त कुछ कुछ हो गई।
पर क्या कहूं मैं सास जी ! अविनय क्षमा कर दीजिये,
इन दीन परबस बालिका की बात कुछ सुन लीजिये—

जब से शरण में आप के आई बहुत दुख पा चुकी,
कितना सहूँ, अम्मा ! सभी विधि में सताई जा चुकी।
गाली गलित, झिड़की अमित सुनती हूं मैं मुँह बाँध कर,
नित व्यंग बानी कटु वचन सहती हूँ मन को साध कर।

हा! कठिन मुष्टि- प्रहार से बेहोश हो जाती हूँ मैं,
यदि कुछ सिसिकती पीरवश कुलटादि पद पाती हूँ मैं।
रवि के निकलने से प्रथम डर से सदा जगती हूं मैं,
बिन हाथ मुंह धोये निरन्तर काम में लगती हूं मैं।

दो दो पहर तक मैं खड़ी धन्धों में रहती, एक पल,
फुर्सत नहीं मिलती कि मुंह में डाल लूं दो बूद जल।
पर, हा! कभी भी सास जी! तुमने न पूछा प्रेम से,
'क्यों नित क्रिया तू कर नहीं लेती है पहले नेम से?'

जाड़ों में आधीरात तक साडी इकहरी अंग पर,
ले शीत जल मलती हूं जूठे पात्र आज्ञा शीश धर,
कँपती हुई आगन में मुझको देख कर, तुमको कभी,
आई है करूणा सच कहो हे मातृ प्रतिनिधि! सास जी!

उस तप्त ग्रीषम काल की कर्शी दुपहरी का समय,
छोटी अंधेरी कोठरी पाकस्थली जो धूम्रमय,
उसमें अकेली बैठकर रोटी बनाती हूं सदा,
हा एक भी रहने नहीं देती हो तुम परिचारिका।

पल भर मुझे इस यातना से जब अलग पाती हो तुम,
पंसेरियों जो पीसने को सामने लाती हो तुम'
क्षण भर मुझे विश्राम करते देख चिढ़ जाती हो तुम,
जितना मुझे सन्ताप हो उतना ही सुख पाती हो तुम।

हो तुम बिना अपराध मेरी ताड़ना करती सदा,
निन्दा किया करती हो,हा! झूठे कलंक लगा लगा।
बीमार मुझको देख कर भौंहें चढ़ा लेती हो तुम,
कहकर "बहाना कर लिया है" गालियां देती हो तुम।

तड़पा करूं जल के बिना हो दाह उर अन्तर विकट,
पर देखने तक के लिये भी तुम नहीं आती निकट।
कुछ गुप्त बातें भी बहुत लज्जा भरी हैं सास जी!
कैसे कहूं समझो स्वयम् जननी हैं वे उपहास की।

भोजन, वसन, प्रीतम-मिलन, सब में है अड़चन क्या कहूँ,
विस्तार कर निर्लज्जता की धार में कैसे बहूं!
क्या ऐसिही सासों को जननी, 'मा' मेरी है मानती?
या तुम विलक्षण सास हो जिसको न थी वह जानती?

अम्मा! सताओ मत अधिक, अब ताप से मैं जल गयी,
दिन रात दारुण दुःख से, देखो मैं कैसी गल गयी!
अब सास का क्या रंग था सुन, यह विनय उरसालिका,
थी शुम्भ के सग्राम में खप्पर लिये ज्यों कालिका।

तड़पी तड़ित सी श्याम-वारिद्-वदन वाली दाप से,
कहने लगी, "आई है लड़ने ख़त मँगा कर बाप से?
हट, दूर हो नटनी निगोड़ी सामने मुंह मत दिखा,
देखो ढिठाई तो सही कथने लगी कैसी कथा।"

अति क्रुद्ध नैनों को नचा बोली बजा कर-तालिका।
"आई कराने प्यार मुझसे शूकरी की बालिका॥
जैसी चमारी मा, बहिन, वैसी चमारी आप है।
वैसा ही दाढ़ीजार भंगी भ्रष्ट इसका बाप है॥

प्यारे! तमाशा देख लो, इस युग की कैसी सास हैं।
इनको न समझो सास ये भारत की सत्यानाश है॥
हे भगवती! हे चण्डिके! हे खड्ग-खप्पर-धारिणी!
ऐसी पिशाची सासुओं की तुम बनो संहारिणी॥

तुमसे कदाचित जो बचें उनको महामारी भखे,
उससे रहें फिर शेष जो तो तक्की उनको चखे।
तीनों से भो जो बच रहें उनसे विनय है दास की,
जय जय बधू तन-रक्त-शोषिणि चपल चण्डी सास की।
जय डाँकिनी! जय साँकिनी! जय भैरवी! जय कालिके!
जय दीन भारत को भयंकर, जटिल-आपद्-जालिके!
कर जोड करता हूं विनय, बहुओं को समझो बालिका,
हठ पाप पण से मन बनो तुम जाति कुल की घालिका।
अब है वधू सरकार में भी कुछ गुज़ारिश दास की,
उनसे भी करनी है मुझे थोडी सिफारिश सास की।
हैं कुछ अकेली सास ही नहिं भूमि भारत की बला,
बहुएँ भी है ऐसी बहुत जो काल ही हैं बरमला।
वे भी सुशीला सास पाकर कुछ उठा रखती नहीं,
है कौन सा सन्ताप फल जो सास जी चखती नहीं।
अवसर मिलेगा यदि मुझे इस पर लिखूँगा फिर कभी,
औ दुष्ट बधुओं के चरित्रों को सुनाऊँगा सभी।
बहुओ विचारो तो सही किस नीति पर चलती हो तुम।
रच कर चिता निज पाप की क्यों आप ही जलती हो तुम॥

———

सास का सन्ताप

इक सास का अपनी बधू से है उलहना जान लो।
है तो शिकायत पर इसे शिक्षावली भी मान लो॥

"वृद्धा हूं मैं तेरी, बहू! नाते में होती सास हूं,
बूढ़ी हुई अब थक गई तेरी ही करती आस हूं।
पर तू सदा ही री, बहू! मुझ पर बनी निर्दय रही,
कै दिन की मैं मिहमान हूं कुछ सोच तो दिल में सही।

अर्द्धाङ्गिनी तू है, बहू! मेरे ही उस प्रिय लाल की,
क्या क्या न जिसके जन्म के हित यातना मैं ने सही।
जप तप किये जग में बहुत औ, देव आराधन अमित,
करके कठिन व्रत नित मनाये सोम सूर्य विनय सहित।

भूखे हुए याचक खिलाये बहुत आदर मान से,
चलते समय भी कर दिया सन्तुष्ट कुछ धन दान से।
बहु टोटके भी मूर्खता से जान कर हित कर किये,
जिस पर सुशिक्षित नारियों ने पेट भर ताने दिये।

फिर की दया भगवान ने मैं पुत्र वाली हो गई,
विकसी कली सौभाग्य की मैं भाग्यशाली हो गई।
आनन्दमय संसार मुझको दीखता था उस समय,
मानो दिया जगदीश ने त्रयताप पर मुझको विजय।

"होती नहीं गति पुत्र बिन" इस वचन का ताना कठिन,
सहयोगिनी कुलनारियाँ देती मुझे थीं रात दिन।
वह भी मिटा, आदर मेरा परिवार पुर में हो गया,
मैं भी हुई अब उच्च, ऐसा भाव उर में हो गया।

आशा अमित मन में जमी सुख शान्ति सकल भविष्य की,
गिनने लगी प्रमुदित घड़ी उस शुभ प्रत्यक्ष सुदृश्य की।
तन मन लगा कर दिवस निश सुख सौख्य सकल विसार के,
करती थी सेवा वत्स की सब भूख प्यास निवार के।

जाड़ों में कैसी शीत है, है ताप कैसा ग्रीष्म का,
सब भूल शिशु पालन किया गंगा ने जैसे भीष्म का।
क्या क्या खिलाऊँ, क्या पिलाऊँ, क्या उचित किस काल में,
नित मुदित मानस किस तरह लल्ला रहे हर हाल में।

बच्चा बचे सब ताप से बस, नित इसी का ध्यान था,
संसार के दुख-द्वन्द्व का कुछ भी न मुझको भान था।
मल-मूत्र नित मेरे लिये सब भाँति मंगल द्रव्य थे,
सानन्द चित उनमें सना रहना मेरे कर्त्तव्य थे।

सोना किसे कहते हैं मैंने उस समय जाना नहीं,
रजनी सदा जगते कटी पर अनख मन आना नहीं।
बीमार होता जब कभी मुन्ना मेरा सच मान ले,
दुनियाँ अँधेरी दीख पड़ती थी मेरी आँखों तले।

पगली सी बन जाती थी मैं कुछ सूझता था ही नहीं,
वह व्यग्रता मन की मेरे कोइ बूझ सकता ही नहीं।
इक बूँद जल मुँह में मुझे विष तुल्य ही था डालना,
आहार निद्रा त्याग कर था रात दिन का टालना।

पट्टी से लग कर बैठ कर रजनी बिताती थी सदा,
गौरी-गणेश मना मना कहती 'हटाओ आपदा'।
करती चिकित्सा नेम से अपने ही हाथों साध कर,
होता न था विश्वास इसमें दूसरों का बाल भर।

आयुर्विदों से जोड़ कर करती बिनय सिर टेक कर,
'दासी रहूँगी जन्म भर अबके हरो दुख, वैद्यवर!'।
लाखों मुसीबत झेल कर जब पुत्र ने पाई युवा,
तब लालसा होने लगी आवे बहू लूँ घर बसा।

फिर यत्न में इसके लगी आशा लगा कर ईश पर,
रखवा दिया इकदिन प्रभू ने मौर सुत के शीश पर।
जो ब्याह में उत्साह था वह क्या बताऊँ मैं तुझे,
किस भाँति उस आनन्द का अनुभव कराऊँ मैं तुझे।

जीवन में मेरे वह दिवस फल था पुरातन पुण्य का,
आनन्द मैं कैसा कहूं जैसा समाधी शून्य का।
अब कब उतारूँगी बहू घर में, लगी इसकी लगन,
आँगन में बैठी साज मङ्गल द्रव्य मैं सानन्द मन।

प्रिय मिलन काल निकट निरख चित-व्यग्रता मशहूर है,
कहती थी सब से 'देखना, बारात कितनी दूर है'।
अरमान जो जो मुद्दतों के थे मेरे दिल में भरे,
आकर समय प्रकटे सभी इक इक के पीछे दूसरे।

क्या क्या उमंग उठी हृदय में कैसी आशाएँ बँधी,
मैं क्या सुनाऊँ याद भी आती कभी अब वे नहीं।
थी सोचती आवेगी दुलहिन, दुखित मातृ-वियोग से,
ले गोद में कर प्यार बहलाऊँगी सकल सुयोग से।

फिर भाव से कुछ मधुर भोजन भी खिलाऊँगी उसे,
गरमी रहेगी सर्द कमरे में सुलाऊँगी उसे।
जब सो उठेगी शान्त ही तब सामने धर शीतल जल,
दूँगी उसे स्वादिष्ट मोदक और सुन्दर रुचिर फल।

सुन्नी को समझाऊँगी फिर 'दुलहिन अकेली है निपट,
दो तीन सखियों को बुला कर बैठ भाभी के निकट।
बातें मधुर, शीतल, मनोरञ्जक, सुना कर प्यार से,
दिल की उदासी मेटना नव वधू की सत्कार से।

भूषण वसन जैसा कुछ उसके अंग पर तुमको मिले,
कहना, 'बहुत अच्छे बने है शुभ्र सुन्दर हैं भले।
माता पिता ने प्रेम से भाभी को दाइज है दिया,
सामान जैसा चाहिये करना, उसी विधि सब किया।'

वे है कुशिक्षित नारियाँ, माता पिता का नाम धर,
ताने सुनाती हैं बहू को जो त्रिविध अपमान कर।
त्यों कर कमीनापन बहू का दिल कभी मत तोड़ना,
ऐसे अयोग्य कुकर्म से, बेटी सदा मुँह मोड़ना।

फिर भाव यह मन में उठा दुलहिन को पूरे प्रेम से,
कह कर पुकारूँगी 'बहू' 'अम्मा' कहेगी वह मुझे।
नित ध्यान में इसके रहूंगी कब उसे क्या चाहिये,
मुँह खोल कर माँगे न माँगे सकुच हो उसके हिये।

संयम करूँगी स्वास्थ्य का उसके निरन्तर प्रीति से,
जलपान, भोजन, शयन, श्रम वैद्यक विदित शुभ रीति से।
साड़ी, सलूका, ओढ़नी, कुर्ती, कमीज, पटादि सब,
मैं उसके रुचि-अनुसार दूँगी जैसी ऋतु आवेगी जब।

त्यौहार में जैसा सजेगा साज उसके अंग पर,
मैं चित्त बाहर भी सजाऊंगी उसे उस ढंग पर।
रोटी बनाने पाकशाला में बहू जब जायगी,
मैं भी रहूँगी साथ बैठी क्योंकि वह घबरायगी।

ईंधन, मसाला, जल, नमक दरकार जो सामान हो,
ला ला के मैं दुंगी उसे जिसमें न वह हैरान हो।
देखूँगी जब उसका परिश्रम पाकशाला में अधिक,
तब मैं कहूँगी त निकल बिश्राम अब कर ले तनिक।

जो शेष है कर लूँगी मैं चिन्ता न कर बेटी ज़रा,
यह हठ करेगी तब उसे अपनी कसम दूँगी दिला।
गृहकार्य्य सब उससे कराऊँगी मगर अन्दाज़ से,
जितना उचित समझा गया है नित्य सभ्य-समाज से।

जब तेल वह लेकर मेरे सिर में दबावेगी कभी,
आशीष दूँगी-'ईश दे शौभाग्य-सुख तुझको सभी।'
जब रात में खा पी के वह ले पाँव दावेगी मेरे,
तब मैं कहूँगी क्या बहू है अंग पत्थर के तेरे?

दिन भर तो तू है कर चुकी पूरा परिश्रम बैल का,
अब आ के बैठी पाँव लेकर जान देगी क्या भला?
जा जा बहू विश्राम कर मंजिल की मैं मारी नहीं,
जब पाँव दुःखेंगे मेरे तुझको बुला लूँगी वहीं।

यों हीं अनेकों भावना उठती थीं मन की मौज से,
मैदान मन का था घिरा बहु बासना की फ़ौज से।
इतने में बोलीं सुन पड़ी बाहर से मेरे लाल की,
समझी कि आई द्वार पर अब वर-बधू की पालकी।

फिर मैं उठी कुल नारियों को साथ ले शुभ याम में,
तुमको उतारा हर्ष से सादर बिठाया धाम में!
निज भावना अनुसार जो सेवा करी विख्यात है,
भूली न होगी तू अभी, प्यारी ये कल की बात है।

पर हा प्रिये! क्यों आदि ही से तू मेरे प्रतिकूल है?
जाना नहीं कुछ आज तक मुझसे हुई क्या भूल है?
है जब से तू उतरी यहां यह कामना मन में रही,
इक बार भी मीठे वचन सुनती तेरे मुँह से कभी।

पर तू सदा ही री बहू कटु व्यंग से उर सालती,
प्रिय वचन के बदले सदा अंगार सिर पर डालती।
था धर्म तेरा साथ पति के मिल के मुझको तारना,
किसने सिखाया सास को झाड़ू उठा कर मारना।

सौंपा तुझे घरबार सारा अन्न, धन, बासन, बसन,
जिसमें रहे सन्तुष्ट तू गृह-स्वामिनी बन मुदित मन।
पर पालती गृह-स्वामिनी का धर्म तू कैसा कठिन,
तड़पा किया करती है बूढ़ी सास तेरी अन्न बिन।

जब भूख से बेचैन हो मैने कभी तुझसे कही,
'खाने को कुछ दे दे बहू दाना हो या सत्तू सही।'
तब ऐंठ कर ताने से तू कहती है 'टुक धीरज धरो,
हलुआ बना कर सामने रखती हूं चिन्ता मत करो।

मालिक है तू घर की बहू धोती तो मेरी देख ले,
पैवन्द कितने है लगे फिरती हूं कैसा भेष ले।
जाड़ा सताना जब मुझे हड्डी के भीतर बेध कर,
मै काटती हू रात सारी एक साड़ी पेन्ह कर।

गूदड़ पुराना है वही जिसमें बहत्तर छिद्र हैं,
सहयोगियों की बात क्या हँसते महान दरिद्र हैं।
लख देह की मेरी दशा, रूखी भरी भर पूर है,
भूसी सी है निन छूटती, पर तनिक तेल अजूर है।

घर में कमी कुछ है नहीं, भगवान ने सब कुछ दिया,
फिर कर रही हैं क्यों भला इस भांति मेरी दुर्दशा।
मुझ पर दया करने को जब तुझसे मुहल्ले वालियां,
कहती हैं, तब तू नाम पर देकर मेरे सौ गालियां।

चमका के मेरी ओर उंगली होके टेढ़ी, आड़ में,
कहती है 'ऐसी सास को मैं झोंक दूँगी भाड़ में।'
धन्धा तेरे घर का सदा करती हूं मैं जी तोड़ कर,
पर तू निरन्तर कोसती है विविध अवगुण जोड़ कर।
कुछ तो उचित है तरस खाना तुझको मेरे हाल पर,
गेहूं-चने का पीसना इस वृद्धपन में ख़याल कर।
जब नम्रता से बात करती हूँ तेरे ढिग बैठ कर,
तू झिड़कियां दे दे के करती है निरादर ऐंठ कर।
कहती है 'तेरा चोचला मुझको कभी भाता नहीं,
टर टर तुम्हारा रात दिन मुझसे सुना जाता नहीं।
यह हाव भाव 'ढकोसला मुझको नहीं कुछ चाहिए,
भूला हो जो उसका उसी से प्रेम- पक्ष निबाहिए।'
हा ! मुझको तू कुतिया से भी बदतर समझती है, सदा,
है यों निरादर सास का तुझको उचित करना भला।
लल्ला कभी जब पूछता, मुझसे खुटाई है तेरी ?'
तब मैं झट्टा करती हूं, बेटा कौन कहता है बुरी ?
तिस पर भी तू रखती है मेरा नाम 'डाइन' 'मन्थरा',
मुझसे अगर डरती नहीं भगवान से तो डर ज़रा।
मुझको तो अपनी दुर्दशा पर खेद कुछ होता नहीं,
डर है यही अन्याय पर भगवान चुप सोता नहीं।
बिगड़ा जो कुछ तेरा भला मैं किस तरह हूंगी सुखी,
इस वास्ते कहती हूं, बेटी ! अब न कर मुझको दुखी।
जिस खान से वह रत्न निकला जो तेरा शृङ्गार है,
उसको जलाना रात दिन क्या मानवी व्यवहार है ?"

जब सास का दुखड़ा बहू इस-भाँति पूरा सुन चुकी,
क्या चाहिए करना उसे पल भर में सब कुछ गुन चुकी।
भर कर के पूरे क्रोध में झोंटा पकड़ कर सास का,
धर धर घसीटा सहन में गट्ठा हो जैसे घास का।
चिल्ला उठी जब सास तब बोली बहू, "रोती हो क्या।
सत्कार जो कुछ शेष था वह भी तो पूरा कर दिया।"
हे कृपा सिन्धु दयानिधे! इस देश का क्या हाल है,
क्या ऐसी बहुओं की इसी भू भाग में टकसाल है?
गृहलक्ष्मी पद वालियों का यदि यही व्यवहार है,
तब तो प्रभो! भारत मही का शीघ्र ही संहार है।
जो जाति जननी यम-विजयनी सती-सावित्री जनी,
कर प्रसव सीता सी सुता जो अटल अभिमानी बनी,
जिसके मुखोज्वल अर्थ पद्मावनि सी कुल वधुएँ जगीं,
हा दैव! अब उस गर्भ से ये कुल कलंकिनि अवतरीं!

—:o:—

ननँद भाभी का मिलाप

दो ननँद भाभी की कथा सुनिये बड़ा रस आयेगा।
है हानि का सम्भव नहीं कुछ लाभ ही हो जायेगा॥
प्यारी ननँद अति दीनता से आज मेरी है बिनय।
टुक बैठ मेरे पास मुझको दान दीजे कुछ समय॥
कितने दिनों से लग रही है मन में मेरे लालसा।
दिल खोल कर इक दिन सुनाऊं आपको मन की व्यथा॥

मैं दीन दासी आपकी हूँ आप मेरी श्रेष्ठ हैं ।
छोटी भी है मुझसे तो क्या नित पूज्य पद से ज्येष्ठ हैं ॥
माँ बाप से छुट कर शरण में आपके आयी हूं मैं ।
अम्मा, बहिन, बूआ किसे, कहिये, यहाँ लायी हूँ मैं ॥
हूं सब तरह आधीन बीबी ! आप ही सब को यहाँ;
मारे मरूँ, जीऊं जिलाये और मेरी गति कहाँ ॥
आधीन पर नित कृपा-दृष्टि प्रसिद्ध सुजन विचार है ।
तिसपर भी मुझको आप से इसका अधिक अधिकार है ॥

प्रिय-बन्धु की मैं आपके सहधर्मिणी विख्यात हूँ ।
इस विशद नाते स्नेह की मैं पात्रता को प्राप्त हूँ ॥
कैसे प्रसन्न करूँ सदा रहती हूं नित इस ध्यान में
सब समय पर सेवा बने सादर, न हो त्रुटि मान में ॥

सब काम घर का ताव पर करती हूं तन सुध त्याग कर ।
जिसमें पड़े किञ्चित न करना आपको कुछ बाल भर ॥
अम्मा कोई गृह कार्य जब आधीन करतीं आपके ।
संशय लगे रहते हैं मझको आप के तन-ताप के ॥

सौ सौ जतन से काट कर कुछ समय अपने काम का ।
करके मदद देती हूं अवसर आपको विश्राम का ॥
जब जब कभी कुछ काम अम्मा आपसे बिगडा हुआ—
लख कर लगीं कुढ़ने, सुनाने रोपमय उत्कट[1] गिरा[2] ॥
तब तब सदा उस दोष का सब भार अपने शीश ले ।
मैं ने बचाया आपको आयी स्वयम् झिड़की तले ॥

१—टेढी । २—बोली, वचन ।

भोजन बना कर आपको तब तक खिला लेती नहीं।
बिस्तर बिछा कर रात में सुख से सुला देती नहीं॥
तब तक मुझे सौगन्ध है इक ग्रास मुंह में डालना।
माँ ने सिखाया था मुझे यों धर्म अपना पालना॥

कपड़े पुराने या फटे तन पर निरखना आप के।
सब से बड़े कारण हुआ करते हैं मेरे ताप के॥
अम्मा से बारम्बार कहती हूं इसे बदलाइये।
टोले मुहल्ले वालियों से मत हँसी करवाइये॥

मैं जिस तरह घर में रहूँ इसका नहीं कुछ सोच है।
बीबी का पीहर में फटे कपड़ों में रहना पोच है॥
पकवान, मोदक, फूल, फल, कपड़ों, खिलौनों पर कभी।
मन को ललकने आपके अनुमान से देखा, तभी॥

करके सहस्रों युक्तियाँ उसका प्रबन्ध करा दिया।
अम्मा ने जब जब "ना" करी चरणों पे शीश गिरा दिया॥
बीमारियों में व्यग्रता, चिन्ता, उदासी आपकी।
करती निरन्तर हैं नहीं क्या वृद्धि मम उत्ताप[1] की?

फिर आप मुझसे रुष्ट क्यों रहती हैं यह बतलाइये?
हैं बात ये सच या नहीं सौगन्ध मेरी खाइये?
बे ऐब का भी ऐब क्यों मुझ पर लगाती आप हैं।
निर्दोष क्यों मुझको दिये जाते कठिन सन्ताप हैं॥

क्या जान कर असहाय यों मुझको सताना चाहिये?
ऐंठी हुई बातें सदा मुझको सुनाना चाहिये?

१—जलन, तकलीफ।

क्या व्यंग-युत[1] कटु वचन ही मेरा उचित सत्कार है?
या आपका नित कोसना ही प्रेम का उपहार[2] है?
अपराध यदि मुझसे बने जो चाहिये कह लीजिये।
पर दुख बहुत होता है बीबी! सुनके निन्दा बिन किये॥

टोले मुहल्ले में भला कोई भी घर ऐसा बचा।
जिसने न निन्दा की मेरी, दी आपने हलचल मचा॥
अम्मा से अपने बन्धु से क्या क्या न मुझ पर जोड़ कर।
तोहमत लगायी आपने सत्यार्थ से मुंह मोड़ कर॥

अब आप कहिये एक भी अभियोग[3] में कुछ सार था।
वे लोग जो सच मान जाते क्या मेरा उपचार[4] था॥
कितना कहूँ, कहने से होगा आपको भी दुख महा।
जो हो गया उसका न किञ्चित ध्यान अब मुझको रहा॥

पर है यही अब कामना बीबी! मेरे मन में बसी।
हो प्रीति की आदर्श दोनों मूर्ति दरसैं एक सी॥
मैं आपके मन में रहूँ लघु अनुचरी की स्फूर्ति[5] सी।
हों आप मानस-भवन में मेरे बसी प्रिय मूर्ति सी॥

मिल जुल परस्पर प्रेम से सब काम सम्मति से करें।
पाकर समय बोलें, हँसें, खेलें जलन जी की हरें॥
अवगुण परस्पर हानिकर दरसैं किसी में जब ज़रा।
सादर बता दे गुप्त गति जाने न जिसमें दूसरा॥

अब कुछ नहीं कहना है मन की गाँठ मैंने खोलदी।
जो वस्तु उसमें थी बधी दिखला के सम्मुख तोल दी॥

१—टेढ़ा। २—भेट, सौगात। ३—इलजाम, दोष। ४—इलाज, दवा। ५—ख़्याल।

ननँद भाभी का मिलाप

सुन कर ननँद लज्जा भरी भाभी की छाती से लगी।
आँखों में आँसू भरके बोली प्रेम से गद्गद् गिरा॥
सच है, बहुत ही सच है भाभी! बात जो तुमने कही।
थीं तुम सदा निर्दोष, सारी दुष्टता मेरी रही॥

मैं झूठ अस्वीकार कर अब क्यों बढ़ाऊँ पाप को।
धिक्कारती हूँ इस विषय में आज अपने आपको॥
किस किस तरह मैंने सताया है तुम्हें उन्माद[1] से।
छोड़ा नहीं पर सुयश तुमने हित किया आह्लाद से॥

नारी नहीं देवी हो तुम भाभी क्षमा की मूर्ति हो।
युवती जगत में शील के आदर्श की पद-पूर्ति हो॥
पर क्या कहूं, यह दुष्टता मुझमें स्वभाविक थी नहीं।
उर कलह की काली कला प्रकटी मेरे घर भी नहीं॥

यह इक पड़ोसिन सहचरी[2] के संग का परिणाम था।
भाभी से जिस खल बालिका का नित्य लड़ना काम था॥
नागिन सी डसने में कुसंगति चूक करती ही नहीं।
फिर वह कठिन विष-व्याल चढ़ कर के उतरती ही नहीं॥

जो हो गया अपराध अब भाभी क्षमा कर दो मुझे।
निज गोद में पुत्री समझ कर मोद से ले लो मुझे॥
अम्मा भला कै दिन जियेगी अब तो बूढ़ी हो चली।
माँ की जगह लेनी है तुम को मैं भली हूं या बुरी॥
मैं पाहुनी घर की तुम्हारे, कै दिनों का वास है।
मेरी कुटिलता याद कर मत भूलना यह त्रास है॥

१—पागलपन। २—सखी।

मत भूलना मुझको कभी भाभी ! सदा उर धारना।
अम्मा को भैया को भी सुधि मेरी कभी तुम पारना॥
तुम लोग जब सादर करोगे याद मुझको भाव से।
भारी बनूगीं मैं वहाँ भी मान के वर्ताव से॥

पीहर से जो बेटी अनादृत है, उसे ससुराल में।
अपमान ही मिलता है भाभी ! जान लो हर हाल में॥
यह आर्त बानी ननँद की सविनय सनेह भरी हुई।
भाभी के उर में शोक-लतिका[1] रूप प्रकट हरी हुई॥

उर से लगा कर ननँद को सुध बुद्धि सारी खो गयी।
करुणा दिला कर आप भी करुणा-कला सी हो गयी॥
लिपटी हुई दो मूर्ति की उर-कमल कलिका खिल गयी।
दो धार करुणा-स्रोत की मानो परस्पर मिल गयीं॥

थी दृश्य अद्भुत चार सरसिज[2] स्रोत थे जल धार के।
दो नारि तन-तट मध्य से जिनके प्रवाह अपार थे॥
कर श्रवण कलकल शब्द इक महिला मनोहर रूप की।
आयी, जहाँ भाभी ननँद थी मूर्ति दृश्य अनूप की॥

लख दशा शंकित, चकित, चिन्तित खड़ी उनके पास थी।
वह एक की उनमें से माँ थी दूसरी की सास थी॥
कुछ देर में प्रस्तुत-प्रकरण प्रशस्त जब सब सुन गयी।
करुणा, सनेह, सुशीलता, सद्भाव, सत्य सुधामयी॥

आनन्द से विह्वल विशद व्यवहार पर मोहित रही।
कहने लगी, "भगवान दे बेटी बहू तो ऐसि ही॥

१—बेल, लता। २—कमल—इस कविता में आँख के स्थान पर आया है।

अपमान सह कर भी बहू ! तू धर्म पर अपने रही।
अपराध बेटी ! मान तूने कर लिया सत पथ सही॥
होती है चूक मनुष्य ही से इसमें कुछ संशय नहीं।
पर मान कर निज दोष फिर सुधरे तो कुछ भी भय नहीं॥

तू धन्य है बेटी मेरी ! प्यारी बहू तुम धन्य हो।
दोनों कुलों की युगल नलिनी मञ्जरी सम्पन्न हो॥
जिस गृह में ऐसे रत्न हों वह क्यों न रत्नागार हो।
क्योंकर न ऐसी बेटियाँ परिवार का शृंगार हों॥

यह कलह भाभी ननँद का परिवार में विष मूल है।
जिस घर में प्रकटे जान लो भगवान ही प्रतिकूल है॥
मिल कर रहो यह बैर प्रतिनिधि काल का मशहूर है।
इक प्रेम ही संसार में सच्चा सजीवन मूर है॥"

निन्दा

जो द्वेष की तनया तिमिर मय हृदय जिसका धाम है,
निन्दित सदा संसार में निन्दा उसी का नाम है।
उपहास, कलह, विरोध की जननी इसे तुम जान लो,
सद्भाव की संहारिणी कृत्या इसे तुम मान लो।
कलुषित कलंकित पाप मय हृदयों की यह उद्गार है,
अघरूप सरिता की प्रबलतर तीव्र काली धार है।
निर्दोष कौशल्या इसी के बाण से मारी गई,
जब कैकई प्रति मन्थरा के मुख से उच्चारी गई।

बन राम को भेजा इसी ने प्राण दशरथ का लिया,
फिर कैकई-मुख-कालिमा बन अवध में दर्शन दिया।
द्वेषाग्नि में जल रूप बन कर शान्ति कुछ करती हिया,
पर शीघ्र ही धिक्कार नद में डाल कर देती बहा।
निन्दक सदा ही नीच बनता नीच के भी बीच में,
मत भूल कर तुम पाँव रखना इस सड़ीली कीच में।
निन्दा पराई अब न कर के मुदित मन होना कभी,
सुनना सुनाना पाप दोनों कह गये मुनिवर सभी।
निन्दा किसी ने दूसरे की आके जब तुमसे कही,
जानो तुम्हारी भी करेगा दूसरों से वैसि ही।

लज्जा

लज्जे ! लज्जे ! तू सखी मेरी प्राणाधार।
तुझ बिन जीवन व्यर्थ है तू जीवन शृंगार॥
बालापन की तू सखी हितकारणी अनूप।
तेरे बिछुडे मैं गिरुं अघ-अवगुण के कूप॥
सदाचार सद्भाव-मय-सम्पति-कोषागार।
उस मम मानस-भवन की तूही चौकीदार॥
तू जब तक बैठी रहे मन-मन्दिर के द्वार।
तब तक ही रक्षित रहें वे शुभ सम्पति सार॥
तेरे तनिक अभाव से कामादिक पट चोर।
उस पुनीत धन को हरें निडर मचा कर शोर॥

नारी मुख को ढाँकती लम्बी चादर डार।
यह तो तेरे रूप का नहीं सत्य आकार॥
तेरा परदा और है वस्त्र पटल कुछ और।
वस्त्र फटे नूतन मिले तेरे फटे न ठौर॥
मुंह खोले महिला चले झीना वस्त्र शरीर।
मुक्त कण्ठ भाषण करे निर्भय विचरे धीर॥
तो भी आच्छादित हृदय जो तव पटल पुनीत।
पूजनीय कुल-दीपिका वह नित दोषातीत॥
घूँघट पट बाहर वृहत अन्तर दुष्टाचार॥
ऐसा घूंघट फूँक दे लज्जा का व्यभिचार॥
धन्य धन्य तू धन्य है प्रिय लज्जे! अभिराम।
तू ही नहिं तो नरक बिन कहाँ नारि का धाम॥

कर्कशा

(१)

सौभाग्य से जिस पुरुष के घर कर्कशा का वास है,
उसको भला बतलाइये यमराज से क्या त्रास है?
जो भोगता है नरक जीते जी अनेकों रीति से,
यमराज उसको यमपुरी ले जायँगे किस नीति से?

(२)

क्या योगियों से कम है उसकी वृत्तियों का धारना,
जो मौन हो सहता है नित गृह-सिंहनी का धाड़ना।
परिवार की तो बात क्या पुरजन पडोसी भी सदा,
जिसके कलह परिताप से सन्तप्त रहते सर्वदा॥

(३)

उस नारि के पति की दशा कहने में मौन फणीश है।,
पत्नी नहीं व्याली विराजित मनों उसके शीस है॥
सन्तप्त मानस व्यग्र चित अति खिन्न शोकाकार है।
भय से निरन्तर कांपता जीवन उसे सिर भार है॥

(४)

बैठी भुजङ्गी भवन में छेड़े बिना नहि काटती,
पर कर्कशा निर्दोष घर घर दन्त विष है बाटती।
उसके निकट जब मौन रह कर भी कठिन निर्वाह है,
फिर भागने को, छोड कर उसको, कहो क्या राह है?

(५)

सन्तत दुखी पति पुत्र पल भर कल नहीं परिवार को,
बालक विलोकि विकल भयंकर कालिका अवतार को।
बेटी बहू हैं यातना में हाय सिसकी ले रहीं,
पद दलित सासु ननँद कहीं व्याख्यान यश का दे रहीं॥

(६)

लड़ती हवा से रात दिन कटु व्यंग छोड न बोलती,
उन्मत्त व्याकुल कलह के हित वीथियों में डोलती।
मुँह चैन से उसका कभी क्षण एक भी रहता नहीं,
सच पूछिये तो वायु भी उस वेग से बहता नहीं॥

(७)

क्रोधान्ध जब चिग्घारती झनकार तजतीं झिल्लियाँ।
कौवे विकल तरु त्याग देते भाग जातीं बिल्लियाँ।
ऐसी दरसती मूर्ति उसकी उस समय भय कारिका
जैसी खड़ी थी राम रन में रक्त प्यासी ताड़िका।

(८)

लट हैं खुले पट हैं गिरा मुंह से निकलता गाज है।
मानो धरे अवतार युवती रूप में यमराज है।
जब कलह कर कलहान्त में रोती है छुन्दाकार से,
तब झड़ी सावन की नहीं तुलती है उस जलधार से॥

(९)

उपवास घर में तीसरे दिन कलह के उत्थान से,
रोगी तलक को पथ नही बचे रहित पथ्य पान से।
है बना घर मरघट सदृश रोता कोई है चीखता,
बालक अलग बिलखा रहे अद्भुत तमाशा दीखता॥

(१०)

पीड़ित पड़ोसी पुर प्रजा हित मित्र सब करते विनय,
भगवान कब इस कर्कशा पर मृत्यु को दोगे विजय।
हे देवियो ! सुन लो जहां जिस घर में उनका वास है,
श्री, शान्ति, स्वास्थ्य सुभाव सद् व्यवहार सब का हास है॥

(११)

मत सीखना यह वानि जीवन ही वृथा हो जायेगा,
मक्खी बनोगी दूध की कोई निकट नहिं आयेगा।
हे ईश सब दुख शीश पर जो दीजिये स्वीकार है,
रौरव भयंकर वास दो तो भी नहीं इन्कार है

(१२)

जो ताड़ना करनी हो अपने दास की कर लीजिये,
पर कर्कशा के साथ का अवसर न मुझको दीजिये।
जोहो चुकीं वह हो चुकीं अब देश का उद्धार हो,
आगे न चल कर फिर प्रभो ! इनका कभी अवतार हो॥

(१३)

है ताप पीड़ित मातृ भूमी आप कुछ सुधि लीजिये,
सब भांति इसको काल ही के मत हवाले कीजिये।
महंगी मरी दुर्भिक्ष फाँसो कोष कष्ट—कलेश के,
दारुण दुशासन से बने इस द्रौपदी से देश के।

(१४)

उस पर कलङ्क का कर लगाया नारियों ने जब भला,
अब आप के बिन कौन सकता काट यह काली बला।
करुणानिधान सुनाम की अब प्रगट कर दीजे कला,
हो जाय इनके छूत से यह भूमि भारत निर्मला।

सरला

(१)

जब कर्कशा गुण गान कर रसना मेरी रूखी हुई।
तब सौख्य सरला के सरस यश गान की भूखी हुई॥
जो गान करता है उसे अब ध्यान से बहिनं सुनो।
गुण जो तुम्हें ग्रहणीय है मन में उसे सोचो गुनो॥

(२)

इस दुःख मय संसार में सुख स्रोत सरला नारि है।
जग तीव्र ताप विदग्ध हिय के हेत शीतल वारि है॥
दुख दर्द चिन्ता शोक पीड़ित पुरुष की आधार है।
नित विपद्-नद में दीख पड़ती पाल सी साकार है॥

(३)

उस मङ्गला की मूर्ति देखे शीघ्र शीतलता मिले।
नर नारि के उर-सर विमल में प्रेम का पंकज खिले॥
आनन्द उमगे हृदय में खिल जाय मानस की कली।
मुसक्यान मधुर विलोकि विकसे मोद की कुसुमावली॥

(४)

प्रिय दर्शनीया प्रेम प्रतिमा शील शोभा छा रही।
अपने सरस प्रिय वैन से मानो सुमन बरसा रही॥
अनबोल बालक भी रसीली बोल उस वरनारि की।
सुन कर परख लेता निरन्तर कला उसके प्यार की॥

(५)

झट त्याग कर जननी सुअंक असीम अकथ प्रमोद में।
अति प्रेम से आता हुमक कर बाल उसकी गोद में॥
सरला जगद् हृद नन्दिनी कुल में कमलिनी रूप है।
जन्मी जहाँ जिस भूमि में वह भूमि धन्य अनूप है॥

(६)

मन से वचन से कर्म से देती न जीवों को व्यथा।
दुख में निरख कर और को सन्तप्त हो जाती सदा॥
रहती नहीं निज स्वार्थ रत डरती सदा अपकार से।
व्यवहार वह करती निरन्तर धर्म के आधार से॥

(७)

सविनय सभी से बात करती पूछती नित प्रेम से।
सुनती सदा अति सावधान सुशीलता के नेम से॥
सुन्दर रसीली मूर्ति है करुणा दया सम्मान की।
मानों सुधा की धार है भेजी हुई भगवान की॥

(८)

बैठी हो वह जिस भवन में सुखशान्ति का नित राज है।
आनन्द, मङ्गल, अभ्युदय धन धान्य का सब साज है॥
जिस कन्त के सुख सदन में सरला सती सा रत्न है।
दुर्दैव उसके स्पर्श का खल व्यर्थ करना यत्न है॥

(९)

उसके लिये विपदा मयी काली निशा सविकाश है।
क्यों कर न हो? जब भवन में सरला सुचन्द्र प्रकाश है॥
परिवार में वह जान सी है पुरजनों में प्रान सी।
कल्याण सी हित मित्र में निज देश हित अभिमान सी॥

(१०)

है रोगियों के हेत औषधि अतिथि हित सम्मान सी।
निज वर्ग नारी जगत में आदर्श निर्मल ज्ञान सी॥
पति के लिये पारस मणी सुत के लिये सुरतरु सुखद।
कन्या जो है उसके लिये है काम धेनू काम प्रद॥

(११)

कोई सतावे दिल दुखावे या अनिष्ट करे कभी।
बदला न लेना जानती करती क्षमा कृपया सभी॥
किञ्चित कलह का रंग उसके हृदय पर जमता नहीं।
जैसे कभी जल विन्दु पंकज पत्र पर थमता नहीं॥

(१२)

कर्कश बचन मुख से कभी उसके निकलता ही नहीं।
गोला चलाना गालियों का उससे बनता ही नहीं॥
हत-काम हो नित कर्कशा मुड़ती है उसके द्वार से।
उसके कलह का सूत जुड़ता ही नहीं इस नारि से॥

(१३)

कैसे जुड़े वह दीनता से नम्र बानी बोलती।
जब खोलती विष गांठ वह यह सुधा रस में घोलती॥
सरले! तू रमणी रूप में मानों रमा है दूसरी।
कोमल कमल-दल सा हृदय आँखों में शील सुधा भरी॥

(१४)

तू धन्य, वर भी धन्य, घर भी धन्य पुरजन धन्य हैं।
जिनकी तुम्हारे दर्श से आखें प्रसन्न प्रसन्न हैं॥
भद्रे! तुम्हारी कीर्ति उज्वल देश में रह जायगी।
फिर स्वर्ग में जावोगी जब नित शारदा यश गायगी॥

(१५)

सरला सुयश का चित्र खींचे कौन कवि से संसार का।
देवाङ्गना भी स्वर्ग में गाती हैं गुण जिस नारि का॥
हा! भूमि भारत तू कभी इस रत्न से भरपूर थी।
इस हेत ही तू भाग्य शाली विश्व में मशहूर थी॥

(१६)

भगवान! भारत वर्ष को सरला सती का काम है।
अब कर्कशा कौतुक से मन इसका बहुत उपराम है॥
इनका भी युग क्या कम चला अब तो भला विश्राम दो।
ये समग्र सेवा करचुकीं बस अब इन्हें सुरधाम दो॥

(१७)

सरला सुशीला रत्न से भंडार भारत का भरो।
दुख देखते बीते बहुत दिन नाथ! अब दिन फेर दो।
अब ताप सहने की नहीं कुछ शक्ति तन में शेष है।
जो सह चुका उससे अधिक अब कौन ताप विशेष है।

विमाता

(१)

कवि कल्पना यह श्रवण करने में अधिक अभिराम है।
नारी हृदय करुणा, सनेह, सहिष्णुता का धाम है॥
कोई सुनाता सरलता का चित्र रमणी रूप है।
कोई बताता नारि करुणा मूर्ति परम अनूप है॥

(२)

है प्रेम प्रतिमा मानता, कोई दया की चन्द्रिका।
दुख की दवा कोई समझता, सान्त्वना की यन्त्रिका॥
पर सौत की सन्तान पर रमणी हृदय की क्रूरता।
अभियोग मिथ्या जोड़ कर उनपर पिशाची शूरता॥

(३)

प्रति कूल रखना नित पिता को भी विविध पाखण्ड से।
अपमान से उनके सुखी सन्तुष्ट होना दंड से॥
हैं खोल देते पोल रमणी हृदय का सँसार में।
पल में डुबा देते हैं कवि गुण गान काली धार में॥

(४)

ध्रुव की दशा का ध्यान कर उर क्षोभ होता आज भी।
जिस दीन शिशु का देश छूटा जनक जननी राज भी॥
वह सुरुचि उर की कालिमा वह प्रबल ज्वाला क्रोध की।
जिसने करी रोमाञ्च कारी दशा बाल अबोध की॥

(५)

है कठिन करुणा-बाण से अब तक कलेजा छानती।
पापी हृदय पाषाण मय पर भी निशाना तानती॥
सानुज गये बन राम सीता हाय किस अपराध में।
निर्दोष कौशल्या पड़ी क्यों शोक सिन्धु अगाध में॥

(६)

तन क्यों तजा अवधेश ने किसने किया यह काम था।
किस की कुटिलता का भला यह शोक प्रद परिणाम था॥
यह सब विमाता कैकई की कीर्ति थी उर आनिये।
रमणी रहस्य अनूप उर का सहज ही पहचानिये॥

(७)

अब कौन जाने कामिनी गति जटिल जाल विशाल की।
ये सरलता की मूर्ति हैं या मूर्ति कुलिश कराल की॥
इस जाति का जगदीश यह कैसा कठिन आचार है।
जिस की विमाता बनीं जीवन उसे दुख सार है॥

(८)

बच्चे विमाता वश पड़े यम विवश जीव समान हैं।
चित्रित करूँ किस भाँति उनको शोक मूर्ति महान हैं॥
सन्तप्त मानस, खेद युत, उत्साह हीन, उदास मन।
भय भीत, नित संकुचित, रुद्धविकाश, कादर, खिन्नतन॥

(९)

भोजन वसन से हीन दीन मलीन परम अनाथ हैं।
पकड़े हुये कच काल के मानों पियादे साथ हैं॥
कहिये बिचारो ध्यान देकर इस विषम ब्योहार को।
क्या मुँह दिखायेंगी विमाता हाय उस करतार को॥

(१०)

करतार की तो बातही न्यारी यहीं है क्या दशा।
उपनाम है उनको मिला डाइन, कसाइन, कर्कशा ॥
देखो विमाताओ! बचो इस पाप मय व्यवहार से।
मत दंड की भागी बनो भगवान के दरबार से॥

बांझ के वंश

(१)

"कुछ दिन से क्यों सन्तप्त चित रहती हो प्यारी शीतला ?
चित में तुम्हारे है हुई क्यों उदय चिन्ता की कला ?
क्यों चन्द्र सी मुख ज्योति उज्वल धूम्र सी है हो रही ?
अरविन्द सी आनन छटा है लालिमा क्यों खो रही ?

(२)

जल कण सदा क्यों दीखते हैं सुमुखि! नीरज नयन में ?
क्यों शोक-सूचक भाव लख पड़ते है सत्वर वयन में ?
भगवान ने करके दया धन, धाम, धरनी सब दिया,
गुण, शील, विद्या, सभ्यता, सुख, स्वास्थ्य दे कृत-कृत किया॥

(३)

लेखा नहीं कम लाख से प्रति वर्ष मेरी आय का,
अधिकार व्यय का भी प्रिये! तुम को है उस समुदाय का।
मैं भी न चूका आज तक पल भर कभी सत्कार में,
अनुचित कहो कब है किया मैंने कभी व्यवहार में ?

(४)

रहता हृदय क्या रत नहीं मेरा तुम्हारे प्यार में?
सत्प्रेम छिप सकता नहीं प्यारी कभी संसार में।
फिर सच कहो इस खेद का कारण भला क्या है प्रिये?
किस ताप के सञ्चार से विस्मित तुम्हारा है हिये॥"

(५)

यह प्रश्न सुनते शीतला के नेत्र जल से भर गये,
रोके गये, माने नहीं जलविन्दु चंचल ढर गये।
विस्मित गिरी पति के चरण पर व्यग्रता न छिपा सकी,
जलधार नयनों से बही उर धीरता नहिं ला सकी॥

(६)

कहने लगी—"प्यारे तुम्ही प्राणेश, प्राणाधार हो,
गुण, शील के आगार सच्चे प्रेम के अवतार हो।
जो सुख दिया तुम ने मुझे संसार में आदर्श है,
इसके लिये सौभाग्यता मुझको मिली उत्कर्ष है॥

(७)

धन धान्य विभव विलास की मुझ को कमी कुछ है नहीं,
अनुचित किसी व्यवहार का प्राणेश तुम से भय नहीं।
बस पूर्व कर्म जनित मुझे चिन्ता जो है विधि से मिली,
है गोद सूनी आज तक चालीस के ऊपर चली॥

(८)

चिन्ता यही रखनी है मुझको निरत विषम विषाद में,
यह बृहत् सम्पति कौन भोगेगा हमारे बाद में।"
सुन कर हँसे देवेन्द्र पत्नी को लिया उर से लगा,
बोले, "प्रिये! किस सोच का संचार यह तुम में हुआ॥

(९)

बच्चे हमारे चैन से भोगेंगे यह सम्पति सभी,
इस व्यर्थ चिन्ता में रहो मत व्यस्त तुम भूली कभी"
आवाक सी मुँह ताकने पति का लगी सुन शीतला,
अति व्यग्र हो कहने लगी—"यह क्या पहेली है भला ॥

(१०)

मैं एक पुतले के लिये प्यारे ! तरस कर मर गई,
भोगेंगे बच्चे हैं कहाँ क्या बुधि तुम्हारी हर गई ?
है क्या तुम्हारी दूसरी पत्नी कोई मुझ से छिपी ?
सन्तान का देखूँगी मुँह विधि की कहाँ ऐसी लिपी ?"

(११)

देवेन्द्र ने तब धीरता से प्रश्न पत्नी से किया,
"अब सच कहो कै पुत्र पुत्री की तुम्हें है लालसा ?"
यह बात सुन कर शीतला का हृदय-दल चञ्चल हुआ,
आशा निराशा का परस्पर द्वन्द युद्धस्थल हुआ ॥

(१२)

फिर हो के उत्कण्ठित अधिक कर जोड़ गद्गद् वचन से,
बोली 'मुझे इक पुत्र इक पुत्री दिखा दो नयन से ।"
देवेन्द्र ने पूछा प्रिये ! बस चाह दो सन्तान की ?
इससे अधिक जो मिल सकें ? बोली—"कृपा भगवान की ॥

(१३)

पर सच कहो यह बात सब कल्पित विनोद असार है ?
या इसकी तह में सत्य का भी गुप्त कुछ आधार है ?
सन्देह इसके सत्य में प्यारी न तिल भर जानना,
पर दो पुनीत सुनियम संयम से पड़ेंगे पालना ॥

(१४)

संकुचित मन के भाव को विस्तृत बनाना एक है,
तज स्वार्थ करना दूसरा उपकार व्रत सविवेक है।
जो धारना तुम से बने सन्तान लाभ सुसाध्य है,
है प्रकृति यदि प्रतिकूल भी यह साधु वचन अबाध्य है॥

(१५)

"प्राणेश तन मन प्राण से दोना तुम्हारी शीतला,
स्वीकार करती है युगल उपदेश जो तुम से मिला।
फिर कौन साधन साधु ने आगे कहा वह भी कहो,
मैं सब करूंगी प्राण- पण से शोच में मत तुम रहो॥"

(१६)

देवेन्द्र ने आरम्भ की तब वह ललित अद्भुत कथा,
सन्तान सम्भव युक्ति अनुपम थी मिली उसको यथा।
"मै एक दिन निज वाटिका की सैर था करता प्रिये !
पल्लवित द्रुम, फल फूल लतिका, देखता हर्षित हिये॥

(१७)

इक वृक्ष के नीचे जहाँ की रम्य थी समतल मही,
देखा वहाँ इक पुरुष अद्भुत कान्ति अति ज्योतिर्मयी।
मृग चर्म पर आसीन मङ्गल मूर्ति तेज अनूप था,
शिव तुल्य सुन्दर अंग उज्ज्वल सौम्य शांत स्वरूप था॥

(१८)

था योगियों का वेश वर अति दिव्य देव स्वभाव था,
मुख की छटा में ज्ञान गरिमा का प्रत्यक्ष प्रभाव था।
मैंने निकट जाकर नवाया शीश उस योगीश को,
बैठो कहा सद्भाव से दे कर मुझे आशीष को॥

(१९)

तब पूछ करके नाम ग्राम अतीव कोमल भाव से,
फिर जीविका-व्योहार पूछा सभ्यमय बर्ताव से॥
सब पूछ कर पूछा तुम्हें कै बालिका कै बाल हैं,
संसार जीवन में यही तो रत्न राशि विशाल है॥

(२०)

मैंने कहा, भगवन ! हुई भगवान को इच्छा नहीं,
उस द्वार से मुझको मिली सन्तान की भिक्षा नहीं।
दो व्यक्ति के अतिरिक्त आगे और पीछे शून्य है,
सन्तान सम्पति लाभ के हित क्षीण मेरा पुण्य है॥

(२१)

योगीश ने सुन कर कहा उत्पन्न क्यों करते नहीं,
कर्तव्य से विधि गति प्रबल अवच्छिन्न क्यों करते नहीं।"
आश्चर्य से मैं चकित हो मन में मनन करने लगा,
यह है हँसी की बात वा कुछ भेद है इसमें छिपा॥

(२२)

बोला "प्रभो ! यह बात है कैसे मेरे अधिकार में,
किसको मिली सन्तान अपनी चाह से संसार में॥
योगीश ने हँस कर कहा होवे न होवे और को,
पर तुम सहज में पा सको-जो युक्ति मेरी मान लो॥

(२३)

देखो तुम्हारा जन्म थल यह ज्ञानपुर जो ग्राम है,
ठाकुर तुम्हीं इसके इसी में घर यही विश्राम है॥
पर जानते हो इसमें कितने आदमी धनहीन हैं,
उनके घरों के दीन बच्चे किस विपद में लीन हैं॥

(२४)

कितने अनाथ विचर रहे हैं ग्राम में बिन अन्न जल,
जिनके न खाने का ठिकाना है, न है रहने को थल।
दो ही दिनों से मैं यहां ठहरा हूं सब कुछ ज्ञात है,
ग्रामेश तुम हो कर न जाने कैसे, दुःख की बात है॥

(२५)

इक्कीस वे मा बाप के चौबीस के माता पिता,
असमर्थ हैं प्रतिपाल में सन्तत सताती दीनता।
दुष्टा दरिद्रा के विवश बच्चे सभी तन क्षीण हैं,
कोमल वदन सूखे सुमन से हो रहे द्युति हीन हैं॥

(२६)

शिक्षा सुधार प्रचार की तो बात ही अति व्यर्थ है,
वे क्या पढ़ें लिखें भला जो पेट को असमर्थ हैं।
बच्चे यतीम बना दिये पापी प्लेग पिशाच ने,
सब सोत सम्पति को जला दी मूर्खता की आंच ने॥

(२७)

धनने तुम्हारे सच कहो उपकार क्या उनका किया,
सुख सेज सोये स्वप्न में भी कुछ न सुध उनकी लिया।
उनसे विरक्त रहे सदा उनकी न कुछ पहचान की,
इस हेत ही देवेन्द्र है चिन्ता तुम्हें सन्तान की॥

(२८)

सन्तान की जो चाह है तो मन्त्र मेरा चित धरो,
जो यत्न बतलाता हूं उसको योग्यता से तुम करो।
दो छात्र गृह इस ग्राम में एक बालिका एक बाल का,
निर्मित करो सुन्दर सुखद पर हो स्वदेशी चाल का॥

(२६)

उन दीन बच्चों को बुला कर उनमें रक्खो प्यार से,
हितकर अशन सादा वसन दो नित उन्हें सत्कार से।
संयुक्त पत्नी प्रेम से लालन करो उनका सदा,
सुख में सुखी दुख में दुखी उनके रहो तुम सर्वदा॥

(३०)

सब का निरीक्षण नीति से पति और पत्नी नित करो,
यह व्रत सप्रेम उदारता से उमँग कर हर्षित करो।
नित भोर सन्ध्या समय बच्चों के सहित भगवान की,
विनती करो फिर सहज ही देखोगे छवि सन्तान की॥

(३१)

मैं क्या कहूँ तुम से प्रिये! उपदेश उस योगीश का,
ऐसा प्रतीत हुआ मुझे आदेश है जगदीश का।
मैं मुग्ध था आंखों में मेरे प्रेमका जल छा गया,
साक्षात यह दर्शा मुझे सन्तान धन मैं पागया॥

(३२)

सविनय कहा योगीन्द्र से मैं ने मुझे वर दीजिये,
यह यज्ञ पूरी कर सकूँ ऐसी दया अब कीजिये।
योगीश ने कर कमल मेरे शीश पर रख वर दिया,
सब सिद्ध होगा देव! शुभ संकल्प जो तुमने किया॥

(३३)

प्यारी, मुझे इस कार्य का मन में उमंग विशेष है,
आरम्भ करने में यही सम्मति तुम्हारी शेष है।
पति देव की यह बात सुन कर शीतला गद्गद् हृदय,
उच्छ्लित हो आनन्द से पति से लगी करने विनय॥

(३४)

प्राणेश ! योगी धन्य, तुम भी धन्य मैं भी धन्य हूँ
मैं भी कहूँगी जगत में सन्तान से सम्पन्न हूं ।
अब शीघ्र ही इस यज्ञ का उत्थान करके दुख हरो.
इस दुःखिनी की गोद को सन्तान से जल्दी भरो ॥

(३५)

"शुभ कार्य शीघ्र" कहा हमारे पूर्व ऋषियों ने सभी,
आलस्य में खल शक्तियां भी विघ्न करती हैं कभी ॥"
सम्पन्न है अब पाठिकाओ ! पुण्यमय आश्रम वहां,
है दर्शकों की भीड़ भारी नित लगी रहती जहां ॥

(३६)

क्या ही मनोहर दृश्य है कैसा विचित्र प्रबन्ध है,
बच्चों से कैसा शीतला का प्रेम मय सम्बन्ध है ।
कहते हैं दर्शक देख कर बच्चे नहीं कल हंस हैं,
कहनी है सब से शीतला इस बांझ के ये वंश हैं ॥

(३७)

योगीश के बरदान से ये सब मेरी सन्तान हैं,
सच है सदा भगवान के जन आप ही भगवान है ।
दम्पति सुखी सन्तुष्ट हैं सम्मान रस है पा रहे,
योगीश का, जगदीश का. हैं यश निरन्तर गा रहे ॥

(३८)

जग में परस्पर व्यक्ति का जो व्यक्ति से सम्बन्ध है,
बस एक 'ममता' मूल पर इसका प्रगाढ़ प्रबन्ध है ।
ममता बनाती जनक जननी भ्रातृ भगिनी सुत सुता,
संसार बन्धन की विधाता है यही जग पूजिता ॥

(३६)

जिसमें लगी जिस भाव से गढ़ती उसी का रूप है,
विधि की बनाई यन्त्रिका यह अकथनीय अनूप है।
भृंगी वनाती कीट को भृंगी इसकी भक्ति से,
मिथ्या जगत यह भासता है सत् इसी की शक्ति से॥

अन्धो लड़को

(१)

कह जन्म को अन्धी मुझे मा! आह, क्यों भरती है तू।
लख कौन मुझ में हीनता, अति खेद नित करती है तू॥
सुनती प्रकाश, विकाश हूं पर क्या है वह, जाना नहीं।
त्यों लाल, पीला, श्वेत, नीला रङ्ग पहचाना नहीं॥

(२)

है सूर्य में कैसी चमक, क्या चन्द्र की है चाँदनी।
छवि उडगणों की है भला कैसी प्रभा-उत्पादिनी॥
सुन्दर, कुरूप, अपूर्व, अद्भुत वस्तु सुनती हूं सदा।
पर आज तक परिचित नहीं मैं हो सकी उनसे कदा॥

(३)

पर स्वप्न में भी उनके पाने, जानने की कामना।
होती नहीं जननी! मुझे यह सत्य ही तू जानना॥
मेरे लिये दिन रात दोनों समय एक समान हैं।
मैं ही वनाती हूं उन्हें मेरा यही अनुमान है॥

(४)

जब चैन से सोती हूं मैं रजनी उसी को जानती।
जब खेलती हूं मुदित मन दिन हूं उसे मैं मानती॥
गाती हूं जब सानन्द चित भगवानकी विरदावली।
सम्पूर्ण हो जाती है विकसित हृदय की मेरी कली॥

(५)

लीला-स्थल जगदीश का जननी ! जगत यह जानले।
जो देखती लखती है इसमें, उचित उसको मानले॥
जिसका नहीं कुछ शोक है मेरे हृदय में व्यापता।
क्यों व्यर्थ उसके हेत जननी हृदय तेरा काँपता॥

(६)

कुछ लोग मुझको देख कर हैं करुण शब्द उचारते।
मुझ में समझती मैं नही क्या न्यून भाव विचारते॥
वे धन्य हैं जो दीन पर करते दया की दृष्टि हैं।
कल सृष्टि भूषण वन्दनीय महान अति धर्मिष्ट हैं॥

(७)

पर मैं अजान न जानती उनके दया के भाव को।
गुनती हूं मन में छेड़ते ये व्यर्थ इस प्रस्ताव को॥
जो आग मेरी है बुझी क्यों लोग धधकाते उसे।
क्यों शान्ति मेरी भंग कर हैं व्यर्थ भरमाते मुझे॥

(८)

जगदीश तेरी ईशता अद्भुत अगम्य अपार है।
आदर्श छोटा सा उसीका एक यह संसार है॥
जो वस्तु है तूने रची सब में छिपा कुछ भेद है।
अल-पज्ञ हैं हम जीव लख सकते नहीं यह खेद है॥

(६)

जिसको रचा जिस ढंग पर तूने उसे सन्तोष है।
अनभिज्ञ मन को देखने के भाव ही में दोष है॥
तू धन्य तेरी भावना निःसीम तेरी शक्ति है।
मङ्गल मयी सब हीनता जिस उर में तेरी भक्ति है॥

बालविधवा

(१)

विधवापन ज्वाल विदग्ध हिया।
अबला असहाय अनाथ महा॥
कबलों चुप साध व्यथा न कहें।
कितना मन में रख ताप सहें॥

(२)

जिनकी वह दारुण शोक कथा।
नितकी वह नूतन प्राण व्यथा॥
सुनते पशु के दृग आँसु चले।
धन वे जन जाति जिन्हें न खले॥

(३)

वह शैशव की निश अर्धगता।
जब थी अति नींद भरी दुहिता॥
इक पर्ण वितान सजा करके।
कुछ शब्द मनोहर गा करके॥

(४)

किसने उसको किसके करमें।
कब सौंप दिया रखके उरमें॥
इसका उसको कुछ ज्ञान नहीं।
स्वपने पति का अभिमान नहीं॥

(५)

विधि की गति क्रूर कलंक भरी।
विधवा करते उसको न डरी॥
पति रूप न देख सकी अबला।
उसके सँग है यह न्याय भला॥

(६)

उर ताप जरे तप योग करे।
अधिकार नहीं दुई बार वरे॥
इसको अभिमान भरे जग में।
कहते फिरते हम धर्म हरे॥

(७)

हमको पर है कुछ रोक नहीं।
घरनी मरती लघु शोक नहीं॥
ततकाल विलम्ब नहीं करते।
जितनी मरती उतनी वरते॥

(८)

यह न्याय अनूप विचार करो।
करते डरते नहिं आर्य नरो॥
विधवा उर शापित पाप पची।
यह जानि रसातल जा पहुंची॥

(९)

अब दूर करो यह पाप प्रथा।
यह धर्म नहीं भ्रम जाल वृथा॥
श्रुति नीति पुनीत नहीं गहते।
ऋषि राज पराशर क्या कहते॥

(१०)

पति के कर से न अभी परसी।
विपदानल बीचहिं आ बरसी॥
उसके संग तो उपकार करो।
हठ त्याग विवाह प्रचार करो॥

(११)

भ्रम भीरु बनो मत धीर धरो।
अब जाति भयंक कलंक हरो॥
न डरा यदि विघ्न महावन है।
नर साहस तीव्र हुताशन है॥

कली या लली

(१)

न कली अभी खिली थी,
न मलिन्द से मिली थी।
न विकाश रङ्ग का था,
न सुवास ही भरा था॥

(२)

न मनोज्ञता दिखाती,
न रसाभिमान माती।
न बनी अभी रसीली,
न प्रगर्विता छबीली॥

(३)

न उगी लतान ही में,
न मनोज बाण ही में।
न अनङ्ग अङ्ग में था,
न समीप सङ्ग में था॥

(४)

न सुअङ्क श्याम पी के,
न बसी हिये किसी के।
सहसा सशोक माली,
करुणा विषाद वाली॥

(५)

ध्वनि में लगा सुनाने,
जल नैन से बहाने।
"सुन री प्रिये मृणाली!
कल मूर्त्ति रूप शाली॥

(६)

वह श्यामला तुम्हारा,
सुरलोक को सिधारा।
सुनती रही विचारी,
समझी न बात सारी॥

(७)

गुनने लगी—विधाता !—
कब का सनेह नाता ?
वह कौन श्यामला था ?
कब स्वप्न में मिला था ?

(८)

वह कौन सी कली है ?
विधवा हुई लली है।
जिसके स्वजातियों ने—
ऋषि नीति घातियों ने—

(९)

यह धर्म है बताया—
कि मरी तुम्हारी काया,
न बरो धरो दिलासा,
उर धार मुक्ति आसा॥

(१०)

भगवान ! क्या करोगे ?
जड़ता नहीं हरोगे ?
यह जाति डूबती है,
फिर भी न ऊबती है॥

स्वतन्त्रता

हे स्वतन्त्रते ! जीवन मूल ।
कहाँ गई तू हमको भूल ॥
तू छूटी या हमने छोड़ा ।
दोनो में मुँह किसने मोड़ा ॥
अथवा अन्य किसी ने नाता ।
तुड़वाया या आप बिधाता ॥
काल बली या कर्म प्रबल ने ।
दिया वियोग दुःख किस खल ने ॥
दोष किसी का नहीं, हमारी ।
कुमति हुई तरुणी मतवारी ॥
धरा ईर्षा रूप नटी ने ।
ब्याह बैर से रचा हठी ने ॥
बना बैर दूलह सानन्द ।
समधी नाश-केतु जयचन्द ॥
चले फूट विग्रह बाराती ।
आगे कलह ध्वजा फहराती ॥
भारत मण्डप बना विशाल ।
दम्पति बैठे आसन डाल ॥
पड़ी भाँवरी मण्डप भर में ।
प्यारा लगा ब्याह घर घर में ॥
बैर ईर्षा की वर जोड़ी ।
सब के हिय प्रिय लगी न थोड़ी ॥

सबने मिल कर किया निछावर।
ज्ञान, मान, श्री, शान्ति द्रव्य वर॥
दाइज में ले पृथ्वी-राज।
दम्पति पुलकित सहित समाज॥
चले सहर्ष निशान बजाते।
ग्राम ग्राम छवि छटा दिखाते॥
तुझे न भाया ब्याह विलास।
चली गई तज देश, उदास॥
अद्भुत हुआ अमङ्गल ब्याह।
छुटा देश घर हुआ तबाह॥
दासी दास बने हम, प्यारी।
तू छूटी हम हुए दुखारी॥
रहा न धर्म न कर्म हमारा।
कुल का मान गँवाया सारा॥
कूकर की गति हुई हमारी।
गया तेज. पति हमने हारी॥
चुने गये हम दीवारों में।
गये जलाये अंगारों में॥
गारे तक में रक्त हमारा।
पापी नराधमों ने डारा॥
आर्य नारियाँ पापी कर से।
छू न जाय व्याकुल इस डर से॥
जीते जली आग में भाग।
कहाँ तलक गाऊँ दुख राग॥

माताओं के आगे बच्चे ।
काटे गये ककडू ज्यों कच्चे ॥
देवालय भी हाय हमारे ।
तोड़े मतवालों ने सारे ॥

गये सताये सभी भाँति से ।
तन से धन से जीवजाति से ॥
उदय हुआ दुर्दैव कराल ।
रूप भयंकर अंग विशाल ॥

कर्म वीरता उसने खोदी ।
कंटक बेल राह में बोदी ॥
दी दरिद्रता को चिटकारी ।
गर्दन उसने हनी हमारी ॥

गये कला कौशल सब छीन ।
अस्त्र सस्त्र से हुए विहीन ॥
बने नुपंसक हम हत भागी ।
आलस दास कर्म वैरागी ॥

लगे ताकने मुँह औरों के ।
हुए श्वान गति वश कौरों के ॥
प्रकृति हुई प्रतिकूल हमारे ।
रोग भयंकर प्रकटे सारे ॥

हैजा, मरी, पलेग, अकाल ।
लगे चाटने जीभ निकाल ॥
पापी गये रक्त सब चूस !
जैसे बिल्ली चांपे मूस ॥

क्या क्या कुगति कथा मैं गाऊँ।
कौन कौन विपदा बतलाऊँ॥
जिस पर प्राण निछावर करता।
तन धन जिसके आगे धरता॥
वही विरोधी हमें बनाता।
काले काले दोष लगाता॥
नभ से हम पर गिरते लूक।
तन मन सारा देते फूँक॥
वायु अग्नि-वर्षा बरसाता।
बाल वृद्ध तक नहीं बचाता॥
जन्म भूमि से छुटता नाता।
अन्य द्वीप में फेंका जाता॥
हुआ ईश भी रुष्ट हमारा।
जब दुख पीडित उसे पुकारा॥
उसने अद्भुत दया प्रकाशी।
उलटी लगी गलों में फांसी॥
सच है जब दुर्दिन है आता।
रक्षक भी भक्षक बन जाता॥
क्या स्वतन्त्र ते ! फिर न मिलेगी।
कभी न आशा—कली खिलेगी॥
प्यारी ! अब मुख चन्द्र दिखादे।
कष्ट—कालिमा वेग मिटा दे॥
वैर ईर्षा की वह जोड़ी।
लगी क्षीण होने कुछ थोड़ी॥

पर जब तू आवेगी प्यारी।
तभी मरेंगे ये व्यभिचारी॥
बहिनो! बच्चों को समझाओ।
बैर ईर्षा दोष दिखाओ॥
कहो हमारे ये कुल-घातक।
इनसे बचना बने जहाँ तक॥
हिन्दू, मुसलमान, ईसाई।
भारत के जन्मे सब भाई॥
करो परस्पर प्रीति हृदय से।
डरो न तुम विघ्नों के भय से॥
विघ्न तुम्हारे जय के चिह्न।
उनसे मन होता उद्विग्न॥
जय कुछ क्षय विन किसने पाया।
है मुनियों ने यही बताया॥
सोना जब ताया जाता है।
तभी दिव्य शोभा पाता है॥
पर यह भी उनको समझाना।
ऊधम अच्छा नहीं मचाना॥
धर्म, धीरता, युक्ति नीतिसे।
करो काम बस इसी रीति से॥
द्रोह बुरा, पर नहीं सुधार।
मिटे कुमति, पर छुटे न यार॥

———

स्वदेशी सकंल्प

(१)

अब हाय ! यह अति घोर विपदा की घटा क्यों छा गई।
किस राह से दुष्टा दरिद्रा घर हमारे आगई॥
किसको लगावें दोष निज कृत कर्म की यह रूप है।
जिसमें गिरे हैं हम हमारा ही खना वह कूप है॥

(२)

हमने विदेशी वस्तुओं का प्रेम से स्वागत किया।
उनके कुदर्शन चक्र से निज ग्रीव निजकर हत किया॥
इस आत्महत्या पाप से हम ताप रव रव सह रहे।
अति नीच निन्दित दासता की धार में हैं बह रहे॥

(३)

धिक्कार देता है हमे संसार निन अपमान कर।
करता अनादर है जगत हमको अधमतर जान कर॥
ताना हमे देती है दुनिया इस पराई आस पर।
हंसती है करतल ध्वनि सहित जातीयता के ह्रास पर॥

(४)

हम मान हीन मलीन दीन असभ्य कहलाने लगे।
पद दलित हो कर आज दर दर ठोकरे खाने लगे॥
हम सोप, सोडा, केक, बिस्कुट, सीगरेट, सीगार पर।
लट्टू हुये धन धर्म दे कर आसुरी आचार पर॥

(५)

जादू विदेशी भाव का सर्वाङ्ग हम पर छा गया।
रग रग में मानो रग परदेशी हमारा आ गया॥
ह्विसकी बरांडी आदि भी आकर हमारे सिर चढ़ी।
मद दे गई, धन ले गई, फिर रक्त पीने को बढ़ी॥

(६)

बासन बसन अशनाचमन सब में विदेशी तत्व है।
पावन स्वदेशी वस्तुओं का शेष नहिं कुछ सत्व है॥
कटिपट, सलूका, कंचुकी, सिर पाग चादर परगनी।
है एक भी अपने नहीं सब के विदेशी हैं धनी॥

(७)

जूता सिलीपर, पायतावा ज़ेरपाई आदि भी।
व्यापक विदेशी हो रहे हैं आज घर घर में सभी॥
इस देश से बढ़ कर विदेशी-विजित जग में थल नहीं।
सूई तलक जिसको बनाने का भी अपना बल नहीं॥

(८)

भाषा तमाशा खेल कूद विदेश ही का भा रहा।
कुत्सित विलास विनोद भी उनका हमें ललचा रहा॥
अध्यात्म तत्व विचार वह जिस पर हमें अभिमान था।
वह अभ्युदय का मूल सात्विक धर्म जो सुख खान था॥

(९)

वह भी गया विषयी विदेशी विषय प्रिय संसर्ग से।
दुर्वासना उर में जगी मानो गिरे हम स्वर्ग से॥
वह विषय रस भी स्वेत नर कालों को है कब बाँटते।
हम मोह वश सुख मान जूठी पत्तलें हैं चाटते॥

(१०)

हे भाइयो ! कुछ ध्यान दो अब तुम बहुत कुछ खो चुके।
इस मोह निद्रा से जगो निश्चिन्त सदियों सो चुके॥
चिकनी विदेशी वस्तु पर मोहित न हो अब फिर कभी।
अपकार अपना जान कर हुशियार हो जावो सभी॥

(११)

अब पांव पर अपने खड़े हो जाति अभिमानी बनो।
मत भूल कर परदेशियों के तुम ऋणी प्राणी बनो॥
हो गर्व गाढ़े पर हमें लज्जा विदेशी सिल्क पर।
हम वारदें सोने की निब अपनी स्वदेशी किल्क पर॥

(१२)

दाना स्वदेशी फल स्वदेशी जल स्वदेशी ईश दे।
श्रद्धा विदेशी वस्तु की हमको न अब जगदीश दे॥
घी तेल शक्कर या जड़ी बूटी सभी निज देश की।
प्यारी लगे हित कर बने, अब हो दया सर्वेश की॥

(१३)

हो सूत चर्खे का कता कपड़ा बना हो देश का।
सूई स्वदेशी से सिला हो सज हमारे वेष का॥
बक्लस बटन मफ़लर विदेशी बेल्ट आदि सभी विरद।
है कठिन पाप-ग्रह हमारे मार्केश कुमीच प्रद॥

(१४)

इन से बचावे ईश हमको शीस का भी हैट से।
लड़के भी खेलें गेंद जो वह भी स्वदेशी बेट से॥
कांटा छुरी प्याला गिलास विलास की दुर्वासना।
उपजे न हमको स्वप्न में भी हो यही नित प्रार्थना॥

(१५)

दीपक जले घर घर स्वदेशी लैम्प की हाजत न हो।
चिमनी विदेशी का हमारे देश में स्वागत न हो॥
आमिष-अशन फ़ैशन विदेशी व्यर्थ फ़रनीचर सकल।
खोते हमारे धर्म करते निन्द्य लेते धन विपुल॥

(१६)

त्यागें इन्हें सादीसी सामग्री हो सादा वेष हो।
सादा मिले कुछ देव भोजन सर्व दुख निःशेष हो॥
शीतल सुगन्धें देश की मस्तिष्क को मोहित करें।
लपटें लविन्डर की न अब चित्त को कभी विचलित करें॥

(१७)

जननी कुरूप कुमार को भी प्राण से प्रिय मानती।
उस से नहीं वह प्रेम-पात्र विशेष जग में जानती॥
निज देश निर्मित वस्तु पर सब का वही सुत भाव है।
पर इस अभागे देश का कुछ भिन्न ही बर्ताव है।

(१८)

हम मर रहे हैं नित बिदेशी वस्तु पर व्यवहार पर।
लज्जा नहीं आती हमें संसार के धिक्कार पर॥
अपनी दही खट्टा भला मक्खन पराया कीच है।
दोनों मे प्यारे बन्धु व्योम वसुन्धरा का बीच है॥

(१९)

प्यारे स्वदेशी वस्तु को जानो है घर की लक्ष्मी।
उसको बिठालो आँख में क़िस बात की फिर है कमी॥
कुछ काल पीछे रूप-राशि वही बनेगी जान लो।
सुन्दर विदेशी वस्तु वेश्या है इसे पहचान लो॥

(२०)

सोचा तो हम पैदा करें कोमल कपास स्वदेश में।
सन जूट अलसी आदि जो अतिशय अलभ्य विदेश में॥
ले कर उसे लघु मूल्य पर हम से विदेशी साथ हो।
कपड़ा बना कर बेचते हैं फिर हमारे हाथ ही॥

(२१)

इस युक्ति से उनसठ करोड़ जमा हमारी खींचते।
मानो हमारे रक्त से वे देश अपना सींचते॥
ये वस्त्र के हैं अंक जानो सैकड़ों बाक़ी अभी।
सिगरेट, सोप, दियासलाई लेम्प लीकर आदि भी॥

(२२)

सब मिल के लगभग डेढ़ अर्व विदेश में धन जा रहा।
मानो हमारे देश को दीमक विदेशी खा रहा॥
जिस देश से प्रति वर्ष ही इस भाँति धन का लोप हो।
उस पर दरिद्रा का कहो क्यों कर न कठिन प्रकोप हो॥

(२३)

गुण गान गांधी का करो या द्रोह उनके कार्य का।
चाहे करो या मत करो दृढ़ प्रीति मुस्लिम आर्य का॥
अस्पृश्य को सिर पर चढ़ाओ बढ़ाओ क्रूरता।
कादर बनो या अभय हो कर तुम दिखाओ शूरता॥

(२४)

सर्विस करो सरकार की या छोड़ बैठो नौकरी।
खेती करो या वणिज या ढोओ पराई टोकरी।
तुम न्याय पंचो से करावो या करावो कोर्ट से।
चाहे डरो या मत डरो तुम गोलियों की चोट से॥

(२५)

झूठी ख़ुशामद में तुम अपने आत्मा को बेंच दो।
या सत्य के संकल्प में सूली से भी तुम मत डरो॥
बन्दी बनो या तुम खड़े मैदान में व्याख्यान दो।
त्यागो सुरा का स्वाद या नित पान ही में ध्यान दो॥

(२६)

छोड़ो वकालत मेम्बरी या मौज से दोनों करो।
जी हाँ हजूर बने रहो या पतित होने से डरो॥
सम्मान-पद को त्याग दो या डालियाँ नित साजकर।
दौड़े फिरो उसके लिये तुम हाकिमों के द्वार पर॥

(२७)

पर जान लो जब तक विदेशी वस्तु छूटेगी नहीं।
इस दासता की कठिन बेड़ी भी न टूटेगी कभी॥
नर-नारि उर में धार लो केवल यही उपचार है।
इस देश के उद्धार की सब युक्तियों का सार है॥

—:o:—

परिवार-संगठन

(१)

मेल ही परिवार-सुख का मूल है,
प्रेम ही इस कुञ्ज बन का फूल है।
प्रेम जीवन मूर जग का सार है,
प्रेम से जग का चमन गुल्ज़ार है॥

(२)

वैर की कलियां चटखती हों जहां,
शान्ति की अलि मूर्ति कब दर्से वहाँ।
सार सौरभ हीन यदि पुष्पावली,
क्यों बसे उसमें मधुप श्यामावली॥

(३)

श्याम वारिद जो न नभ में घोर हो,
मोर का कल नाद किस की ओर हो।
चार ही दिन का जगत में वास है,
प्यार जीवन का विशद उल्लास है॥

(४)

प्रीति पावन शक्ति सबला भार है,
मोहती निज मन्त्र बल संसार है।
भूर हो दुख घोर विपदा आपडे,
हो सुसम्पति संगठन तो क्यों डरे॥

(५)

प्यार से युग बांध के जो चाल हो,
काल कौतुक से न घर पामाल हो।
कर्कशा ध्वनि से सदन गुञ्जार है,
द्रोह का समराज वृहदाकार है॥

(६)

क्या वहाँ परिवार सुख सचार हो,
सौख्य सम्पति का दरश क्या द्वार हो।
वैर से मुँह मोड़ कर देखो ज़रा,
प्रीति में रस है मधुरता का भरा॥

(७)

हो गया इस वैर खल से नाश हा !
राज का धन का वसन का मान का ।
सूझता अब भी न वह जो खो गया,
नारि या नर की सुमति जो खो गया ।।

(८)

होनहार कला प्रबल ही है सही,
ज्योति में जलना शलभ है आप ही ।
भ्रान्ति से कलहाग्नि तपती है सदा,
कौन है घर जो न तपता हो भला ?

(९)

बन्धु के सँग बन्धु लड़ते हैं सभी,
सास की पटती न बहुओं से कभी ।
प्यार की बहिनें न करती चाह हैं,
जारही वह भी कलह की राह हैं ।।

(१०)

पत्नियाँ पति से दुखित हैं हे प्रभो,
कन्त कामिन से व्यथित हैं; क्यों न हो !
वाहरे ! विधि की प्रबल माया नटी,
नाचने किस भूमि पर तू आ डटी ।।

(११)

श्रोत निर्मल शान्ति रस की चाह है,
तो लखो उस ओर की जो राह है ।
मेल से सहयोग गति से काम हो,
स्नेह सम्मत से सतत अंजाम हो ।।

(१)

हो नहीं निज स्वार्थ मल की वासना,
आप ही नित अर्थ अपना गाँठना।
बाँट लो रख काम बहिनों नेम से,
मेल से कर लो न विचलो क्षेम से॥

(१३)

जो सरे जिससे सुगमता से सही,
न्याय सम्मत काम करने दो वही।
हो क्षमा चित में सहन को शक्ति हो,
प्यार हो लघु में सुगुरु में भक्ति हो॥

(१४)

जो बड़ा घर का सुपद में ज्येष्ठ है,
तो करो सत्कार उसका श्रेष्ठ है।
रोग में तन खिन्न गति में प्रेम से,
जान से तन से मदद दो नेम से॥

(१५)

देख लो फिर शान्ति सुख उल्लास हो,
भूरि वैभव का सदन में वास हो।
धार लो बहिनों सुमति का सार है,
नेह की तरणी भँवर के पार है॥



सुमन

कैसा मोहन रूप सुमन ! तुम ने पाया है,
मानों प्रकटी रूपवान हरि की माया है ।
वायू द्वारा भेज रहे हो तुम उदार वर,
दशों दिशा में निज सौरभ मधु पुञ्ज रसाकर ।

नयन-नासिका के वर विषय सुखद प्यारे हो,
द्रुम कुल के सिरमौर सुभग सुन्दर बारे हो ।
मधुकर के रस-राशि प्राण-प्रिय जीवन-धन हो,
ऋतुपति के श्रृङ्गार बाग वन के जीवन हो ।

चिन्ता, शोक, विषाद ग्रस्तमन को विकसाकर,
हर लेते हो खेद, रूप अपना दिखलाकर ।
क्रूर करों से तुम जिनके तोड़े जाते हो,
परम अनूप सुवास उन्हें भी पहुँचाते हो ।

उचित देव के शीश तुम्हारा मानस्थल है,
धन्य धन्य हे पुष्प ! तुम्हारी कीर्ति विमल है ।
है चिन्ता कुछ नहीं तुम्हारा यश सुन्दर है,
कीर्तिवान की अल्प आयु भी अजर अमर है ।

पर क्या कम अविवेकता बूढ़े विधि ने की सुमन !
तुम्हें अल्प आयू दिया, चहिये जिसको अमरतन ॥

× × × ×

प्यारी बहिनो ! सुमन सम यश सुगन्ध जग में भरो ।
जीवन अल्प, विशेष की मत चिन्ता में चित धरो ॥

एक फूल

कल इक सुमन खिला था शोभा अनूप धारे,
अलि-वृन्द झूमते थे उस फूल के किनारे।
सुख चूम चूम सौरभ-रस पान कर रहे थे,
वीणा की लय में मानो कल-गान कर रहे थे।

मधु मय सुवास फैला था पुष्प-वाटिका में,
सब मुग्ध हो रहे थे उस रूप की छटा में।
द्रुम-मूल में सुमन के हँसती सी जो मही थी,
सौभाग्य राशि-रम्या छवि क्षेत्र बन रही थी।

कमनीयता कुसुम की वह विधि की चित्रकारी,
निर्मल सुगन्ध सुखकर भौंरों की भीड़ भारी।
इक धूम सी मची थी अद्भुत चहल-पहल था,
शोभा सुगन्ध दोनों का केन्द्र वह सुथल था।

था पुष्प-नाल हिलता हलकी हवा के बल से,
मधुकर वियोग के डर लिपटे रहे सुदल से।
छवि प्रेम की परस्पर सौभाग्यता सरस थी,
दोनों की कामना गति एक एक के स्ववश थी।

इतने में आ के निर्दय माली ने उस सुमन को,
झट चुन लिया अचानक मधुकर के प्राण-धन को।
व्याकुल विरह व्यथा से चंचल मलिन्द सारे,
गुंजार कर उठे फिर विस्मय भरे सिधारे।

मैं क्या कहूं कि कैसी छाई वहां उदासी,
पल भर में खो गई वह सब रम्यता रमा सी।

सुखमा सरस सुहावन पावन प्रसन्न अवनी,
क्षण में बदल के दर्सी सुनसान शोक स्रवणी।
मैं खेद में भरा था चिन्तित चकित खड़ा था,
उस खल की क्रूरता का सदमा मुझे बड़ा था।

माली ने मुस्करा कर तब यह वचन सुनाया,
नश्वर जगत है प्यारे! किसकी अमर है काया?
जो जो यहाँ बिराजे क्या क्या न साज साजे?
पर काल ने न छोड़े लुटे बजा के बाजे।

हाँ कर्म बेलि यश की जो जग में कल्पतरु है,
उसमें खिला सुमन जो जानो वही अमर है॥
गुल जो सुगन्ध यश का फैला के टूटता है,
उसका न शोच कीजे वह शोचनीय क्या है?

प्यारे! विचार कर लो मरना तो मुख्य ही है,
पर यश-विहीन जीवन इस जग में तुच्छ ही है।

ग्रामीण की जन्म-भूमि।

जननी जन्म भूमि से बातें ग्राम-निवासी करता है
सुनिये कैसा प्रेम सुधा से हृदय-सरोवर भरता है।

"जन्म-भूमि! तेरे रज कण में क्या आकर्षण शक्ति भरी।
जो मेरे निष्कपट हृदय की इतनी तुझमें भक्ति भरी॥

ग्राम नाम प्यारा तेरा सुन हृदय सहर्ष उछल जाता।
प्रेम-बाण से विधा हुआ मन पल पल तुझ पर बलि जाता।

भूरे भूरे मिट्टी के बे-डोल-डौल ये घर तेरे ।
जननी सदा बसे रहते हैं मानस-मण्डल में मेरे ॥
गले फूस के छप्पर तेरे इतने मुझको भाते हैं ।
जिनके आगे राजभवन भी अतिशय तुच्छ दिखाते हैं ॥

तेरी टेढ़ी मेढ़ी पतली गलियां मन हर लेती हैं ।
ऊँची नीची विकट भूमि भी नैनों को सुख देती हैं ॥
गोशालाएँ गोमय युत भी मङ्गल दृश्य दिखाती हैं ।
गिरि-शिखरों सी उपलों की छवि अद्भुत छटा लखाती हैं ॥

ठौर ठौर पर लम्बे लूटे हैं पयाल के दिखलाते ।
कहीं बाजरे अरहर के भी डंठल हैं शोभा पाते ॥
वे थल ऐसे सुन्दर श्रीमय मनमोहन सारे लगते ।
जैसे किसी धनी के कोषागार उसे प्यारे लगते ॥

श्रम जीवी तरुणी ललनायें सादे भूषण सादे वेष ।
पाँति जोड़ कर कृषी निराती धूल भरे तन बिखरे केश ॥
वह मन मोहन छवि उनकी फिर मधुर सोहनोकी वह तान ।
पथिक विमोहित रूप खड़े सुनने लगते हैं मधुर सुगान ॥

अगहन पूस माघ में ईख, सुधारस की चूती है धार ।
जिसको पीकर तन उपवन में आ जाती है नई बहार ॥
रुचिर पर्णशाला जिसमें उस रस का होता है उद्गार ।
उसकी चहल पहल की वह छबि प्रेम सभा आनन्द बिहार ॥

देखे ही बनती है प्यारे कहने की यह बात नहीं ।
वैसी सुषमा मोद विनोद नहीं देखा दिन रात कहीं ॥
वहां ईख पत्रों के ऊँचे गद्दे पर जो सोते हैं ।
हँसते हैं उन पर जो मखमल के गद्दों को रोते हैं ॥

मङ्गल मय मधुमास सुहावन जब स्वदेश में आता है।
अन्नदान देकर कृषकों को अति पुनीत यश पाता है॥
खेत काटने तब किसान अपने खेतों में जाते हैं।
और चना जव मटर भुलस कर निमक मिर्च से खाते हैं॥

वैसा मधुर स्वाद कहिये कृषकों बिन भला कौन पाता।
नये अन्न का रस विशेष है किस मन को नहि ललचाता॥
कहो भला वह साग चने का दाना हरा भुना नव अन्न।
देती है किसको भूदेवी कृषक बिना हो सदा प्रसन्न॥

जहां जमा होता खलिहान वहां की है शोभा न्यारी।
ग्रीष्मनिशा की शीतल वायु मनोज्ञ चन्द्रिका चितहारी॥
कृषकों का सोना हण्ठल पर प्रेम परसपर हर्ष विनोद।
क्या समझे जिसको नसीब ही हुआ नहीं वह प्रकृति सुगोद॥

जल थल देश बिदेश जहाँ मैं कार्य विवश हो जाता हूँ।
तेरा चित्र पवित्र हृदय में रख कर तुझको ध्याता हूँ॥
सुसमय पर जब वर्षा ऋतु में वारिद जल बरसाता है।
तेरा हृदय तृप्त लख मेरा हृदय कमल खिल जाता है॥

कभी अवर्षण से जब तेरी तृषा अधिक बढ़ जाती है।
चिन्ता-अग्नि ज्वाल तब मेरी छाती निच जलाती है॥
शस्य श्यामला हरी भरी लख मैं तुझको इतराता हूँ।
भक्ति-भाव से तेरी तुझको विरदावली सुनाता हूँ॥

तेरे शस्य सूखते देख कलेजा मुँह को आता है।
नींद नहीं आती आंखों में चिन्ता-ताप जलाता है॥
तेरे ग्राम-चरित्र निकम्मे वे भी मुझे लुभाते हैं।
जिनके प्रेमी फ़ैशनवालों में गँवार कहलाते हैं॥

द्वार द्वार पर गड़ी नाँद में गायें चारा खाती हैं।
आते जाने देख किसी को चौंक चौंक सी जाती हैं॥
जैसा दृश्य रसीला मेरे मन को यह ललचाता है।
मृग नैनी का चौंक-चिहुक क्या वैसा रस बरसाता है॥

कहीं छुटा कर बैल भगा है लिये पघे को अपने साथ।
उसके पीछे कृषक लगा है मोटी लाठी जिसके हाथ॥
हाँफ हाँफ कर 'ही ही' करता दौड़ा दौड़ा आता है।
हटो, बचो, सम्हलो, देखो वह बार बार चिल्लाता है॥

बाल-समूह खेलते मग में देख विकल हो चिल्लाते।
दायें बायें प्राण छोड़ कर हैं सरपट भागे जाते॥
यह अति तुच्छ तमाशा जैसा मुद मय भाव दिखाता है।
देखी हैं घुड़-दौड़ बहुत पर वह आनन्द न आता है॥

नित किसान बैलों को लेकर खेत जोतने जाते हैं।
ठीक दोपहर थके धूल से लिपटे जब घर आते हैं॥
स्वागत को तब भाग्यवती उनकी घर वाली आती है।
आगे धर जल पूर्ण पात्र सकुचित खड़ी हो जाती है॥

उस सप्रेम सादे स्वागत पर मेरे मन ने यही कहा।
आफ़िस से आये बाबू-पत्नी का सूखा स्वागत क्या॥
कृषक कुमार हरी घासों का गट्ठा अपने सिर धारे।
अपने अपने घर आते हैं हँसी चिहुल करते सारे॥

मात-पिता उनके तब यों प्रसन्न मुख देखे जाते हैं।
मानों उनके प्यारे बालक नव निधि घर को लाते हैं॥
ऐसे भाव देख कर मेरा मन मोहित हो जाता है।
कैसे कहूँ वचन से उसको जिस सुख को उर पाता है॥

साँझ सवेरे गोप भाण्ड में दूध दूहने लगते हैं।
बछड़े बँधे टाँग में माँ की थन की ओर उचकते हैं॥
घर्न घर्न सा शब्द दूहने में जब होने लगता है।
वह मनमोहन स्वर सितार की महिमा खोने लगता है॥

धूआँ गुम्बद सा भूजे के घर पर जब दिखलाता है।
कृषक-कामिनी दल त्यों ही ताँता सा लग जाता है॥
भाड़ भवन में तत्क्षण खासी एक सभा जम जाती है।
समालोचना सारे पुर की उसी समय तय पाती है॥

देख, सखी-सम्मेलन-शोभा जैसी वहाँ दिखती है।
रम्य विनोदस्थल की छवि भी आखों से गिर जाती है॥
उनकी पनघट की लीला भी यद्यपि अति फूहड लगती।
निन्दा कलह कटाक्ष व्यंग की नित्य जहाँ पर झड़ लगती॥

सास ननद प्रीतम की दुख सुख गाथा भी खुल जाती है।
अति असभ्यता पूर्ण दृश्य भी मुझे विलास दिखाती है॥
पुरुषों की पंचाइत होती साल मास में कभी कभी।
हक़ पद के कुछ न्याय निपटने जाति पाँति के कलह सभी॥

उन्न जलसे में वट या पीपल तरु का है वितान तनता।
नीचे का समतल थल ही है सुन्दर फ़र्श वहाँ बनता॥
चन्द्र-लैम्प से ही प्रकाश का काम हमेशा चल जाता।
लिखी पढ़ी कुछ नहीं जुबानी सारा काम निकल जाता॥

बहस दलील वाक्य पटुता जो उनकी सुनने में आती।
उसे श्रवण कर निपुण वकीलों की भी मति है चकराती॥
न्याय भवन में हाकिम जी जो न्याय नमूना दिखलाते।
सत्य सत्य लिखता हूँ उससे टक्कर कभी नहीं खाते॥

छोटे छोटे बालक बन में धेनु चराने जाते हैं।
भुने अन्न झोली में भर कर झूम झूम कर खाते हैं॥
शीत उष्ण वर्षा भी उनको तिल भर नहीं सताते हैं।
प्रेम-मग्न ज्ब उछल कूद वे बिरहे अपने गाते हैं॥

मैं गुनता हूं शहरी बालक वह बिलास कब पाते हैं।
जिस स्वतंत्र जीवन पर सनकादिक भी बलि २ जाते हैं॥
ग्राम-नारियां उषा-काल में जाँतों पर जुड जाती हैं।
जाँते वाली गीतों को पद पद पर रुक रूक गाती हैं॥

इसी युक्ति से श्रम करने में श्रम का भार घटाती है।
सभी आलसी पुरुषों को शरमाती और जगाती है॥
सुन सुन अनमिल छन्द रसीले कैसा मन सुख पाता है।
मानो मानस-जनित ताप कण कण हो कर पिस जाता है॥

जन्मोत्सव विवाह में भी सब ललनाएँ जुड़ आती हैं।
उसी भांति की चेतुक वेढब गीतें मिलकर गाती हैं॥
उन्हीं ग्राम-गानों से जैसा मन प्रसन्न हो जाता है।
वह आनन्द वीन-स्वर सुन कर मुझे कभी नहिं आता है॥

कोमल कमलों सी वनितायें जो केशों के भारों से।
बल खाकर गिर जाती हैं सुनता हूँ कविवर प्यारों से॥
वैसी कोमल ललनाओं का मिलना तो है कठिन यहाँ।
होवें भी तो वे सुकुमारी पावें वैसे रसिक कहाँ॥

हाँ, प्रसन्न-वदना सुमुखी जो हृष्ट पुष्ट तन तोशों की।
आब ताब में छटा दिखातीं अँगूरों के खोशों की॥
वैसी यहां अवश्य दीखतीं निपुण स्वास्थ्ययुत बलशाली।
बिम्बा के से अधर अरुण तन बड़ी बड़ी आंखों वाली॥

वैसे पुरुष यहां न दीखते जिनकी टेढ़ी माँग कढ़ी।
तेल फुलेल सुगन्ध लगाये आन बान से आंख चढ़ी॥
बांके तिरछे बने रंगीले कोट बूट से लसे कसे।
अंग अंग की छटा दिखाते हाव-भाव में रसे बसे॥

बैठे हुए द्वार पर अपने सिंह-नाद जो करते हैं।
हां, जब घर से दूर पड़े तब गीदड़ बन कर डरते हैं॥
पर वैसे जो लट्ठ लगाये वीर भाव से पगे हुए।
जिनके लोहे के से तन पर मिट्टी कीचड़ लगे हुए॥

जो भादों की अर्ध निशा में खेतों में विलास करते है।
शूकर सिंह मिले जो मग में उनसे तनिक नहीं डरते है॥
यहां निरन्तर बस करके वे अपने बल पर जीते हैं।
नया अन्न उपजा कर खाते निर्मल पानी पीते हैं॥

त्योहारों में उनके अद्भुत बेढब कौतुक होते हैं।
होली में विशेष मनवाले लज्जा सब की खोते हैं॥
कीचड़ ही में लत्त पत्त नर नारि परस्पर हो जाते।
ढोल मँजीरा झाँझ लिये फूहड़ फूहड़ गीतें गाते॥

रंगों की पिचकारी से नख शिख तक तर कर देते हैं।
स्वाँग लिये योगिन योगी का घर घर फगुआ लेते हैं॥
सच कहता हूं जन्म-भूमि! जब होली में तू छूटी है।
यहां आह उर से निकली है क़िस्मत मेरी फूटी है॥

मिलता हूँ सज्जन समाज से उमँग प्रेम से सदा सही।
पर प्रमोद कब हो जब तू है और कहीं मैं और कहीं॥
जननी! तेरे सीधे सादे सरल स्वभाव मनुष्यों से।
जो मिल करके स्वाद मिला वह मिला न सभ्य सदस्यों से॥

जो रस उनके 'बाबा, काका, या भैया' स्वर में आया।
'सर, मिस्टर, साहब, हजूर' में मैंने उसे नहीं पाया॥
देहाती के खान-पान का हाल कहूं जो खाते हैं।
उनके मोटे खानों पर सब शहरी हँसी उड़ाते हैं॥

पर किराव की मोटी रोटी मट्ठा या पय-युक्त मुझे।
जो देती है स्वाद उसे मैं क्या बतलाऊँ मात तुझे॥
पूड़ी खीर पुलाव मिठाई शहर निवासी खाते हैं।
पर जो स्वाद मुझे मिलता है कब उसको वे पाते हैं॥

जब मचान पर मैं सोता हूं पानी मेघ बरसता है।
मेरी सुख-निद्रा को लख कर मन में इन्द्र तरसता है॥
शहरों सी कुछ चमक दमक वैभव विभूति उन्नतशाली।
तुझमें मिलती नहीं जन्मदा भू-देवी किसान-वाली॥

जननी! तेरे घर नाटक सरकस मैजिक का नाम नहीं।
विद्वानों की लेक्चरबाजी से भी तुझको काम नहीं॥
हाकी क्रिकेट फुटबाल आदि के खेल तमाशे यहाँ कहाँ।
कलब कमेटी सभ्य सभा की प्रभा न देखी गई यहाँ॥

घड़ी रात जो गई गाँव में सन्नाटा हो जाता है।
दिन का थका किसान साँझ ही खा पीकर सो जाता है॥
कहीं कहीं रामायण होती वह भी अर्थ घुमा करके।
चीख़ चीख़ कर शोर मचाते ढोलक झाँझ बजा करके॥

लड़के भी जो खेला करते गुल्ली डंडा गेंद लिये।
ओल्हा पाती और कबड्डी कुश्ती नट का वेष किये॥
वह भी वही पुरानी घिस घिस भद्दापन से भरा हुआ।
नई रोशनी वाले जिसको कह देते हैं सड़ा हुआ॥

फिर तेरी किस छवि पर मैं यों प्रेम पियासा रहता हूँ।
भद्दे निरस चरित्र ग्राम के देख देख सुख लहता हूँ॥
क्यों तेरी महिमा बिन गाये मुझसे रहा नहीं जाता।
या तेरा अपमानित होना मुझसे सहा नहीं जाता॥"

यह सुन बोली जन्म-भूमि "क्यों लघुता मेरी दिखाता है।
अपनी तुच्छ प्रीति का भी इहसान महान जताता है॥
विनय सुनाता है उस पर भी तू शायद पछताता है।
बात बात में ओछापन का मुझको व्यंग सुनाता है॥
क्या कथा मेरी जनता का सब भद्दापन दरसाता है।
इसको कहते प्रीति नहीं यह तो तू मुझे बनाता है॥
वह दिन तुझको भूल गया जब इस दुनियाँ में आया था।
सबसे पहले किसने तुझको छाती से चिपकाया था॥
तिमिर खण्ड से आकर पहले कहाँ तुझे विश्राम मिला।
जहाँ अधो मुख लटक रहा था कुछ तो मन में सोच भला॥
ले मैंने ही तुझे गोद में पहले पहल सँभाला था।
तूने अपना भार विवश हो मेरे ऊपर डाला था॥
फिर घुटना चल चल मेरे बल दौड़ दौड़ चलना सीखा।
रौंद रौंद तन खेल कूद कर हृष्ट पुष्ट बनना सीखा॥
पौढ़ा मेरे उर के ऊपर मल मूत्रों का दे उपहार।
तो भी तेरा पालन-पोषण मैं करती थी सहित दुलार॥
तेरी माँ ने खाकर मेरे अन्न तुझे पय दान दिया।
गायों ने खा घास हमारी दूध दिया बलवान किया॥
जल देती हूँ विमल कूप से तुझको हित कर दूध समान।
जीवन-प्रद जो पवन खुला है उसके लिये मेरा उद्यान॥

रे कृतघ्न ! मेरी निन्दा कर दिखलाता है अपनी भूल।
मेरी उदर-दरी में सञ्चित है कृषकों का जीवन-मूल॥
तू क्या जाने मूर्ख; प्रकृति पर तेरी अन्तर्यामी है।
करे न प्रीति-प्रेरणा तुझमें तो उसकी बदनामी है॥

तू ग्रामीण कहे जाने पर उलटा लज्जित होता है।
स्वाभिमान पद पाकर क्यों तू उसका दुखड़ा रोता है॥
तेरा है उपकार सृष्टि पर कौन न इसको मानेगा।
है धिक्कार उसे जो तुझको अपने से लघु जानेगा॥

कहदे फ़ैशनवालों से—"क्या मुझको शान दिखाते हो।
क्यों कृतघ्न बनते हो मूढ़ो मन में नहीं लजाते हो॥
मैं हीं देता अन्नदान जिसको खा खा कर जीते हो।
मेरी पाली गायों के मक्खन खाते पय पीते हो॥

कन्द मूल फल फूल तश्त में रख करके चख जाते हो।
किसके पैदा किये हुए हैं कभी चित्त में लाते हो॥
मेरी सींची हुई ईख की मिश्री बन कर आती है।
राव रंक सबको जो अपना तृष्णा-पात्र बनाती है॥

मैं कपास उपजाता हूँ जिससे रुई पैदा होती।
कोट पैंट बनता है उसका उसकी ही चादर धोती॥
जिसको ओढ़ पहन कर बनते हो बाबू फ़ैशनवाले।
बाबू ही से तुष्ट न होते तो बनते साहब काले॥

उस सब्ज़ी की खान कहाँ है उसको कौन बनाता है।
जिनका लैम्प गिलास तुम्हारे फ़ैशन को चमकाता है॥
दुख देता मैं नहीं किसी को मेहनत करके खाता हूँ।
औरों की कीले मुफ़्त कमाई लक दक नहीं बढ़ाता हूँ॥

सीधे सादे सहज भाव से अपना काम चलाता हूँ।
पर धन पर दारा से निस्पृह होकर कृषक कहाता हूँ॥
उनका उत्तर हुआ तुझे भी कुछ विचार करना होगा।
निज असभ्यता का निज हाथों कुछ सुधार करना होगा॥
सड़े पनालों का पानी जो मुझ पर नित्य बहावेगा।
घर में सड़ी गली चीज़ों का जो अम्बार लगावेगा॥
बस्ती में मेरी छाती पर कूड़ा करकट लादेगा।
तो तू मुझे कराल कालिका अपने आप बना देगा॥
बान हानिकर मैल कुचैल बने रहने की त्याग करो।
चाहे मोटा पहनो पर गन्दापन से वैराग करो॥
यदि इतना विचार रक्खो फिर कौन तुझे पा सकता है।
तेरी उज्वल रहन सहन पर क्या धब्बा आ सकता है॥"
यों कह वसुधा मौन हुई तब ग्लानि असित ग्रामीण हुआ।
शीश झुका कर बोला, "जननी मेरा अब भ्रम क्षीण हुआ॥
जन्मभूमि ! तुझ सी तू ही है और किसे मैं बतलाऊँ।
तेरे आगे इन्द्रपुरी की महिमा भी मैं क्या गाऊँ॥
नभ समान नभ ही होता है सागर के सम सागर है।
मुझ सम जान मूर्ख मै ही हूं दिनकर के सम दिनकर है॥"

गङ्गा

भारत की पूज्य देवी गंगा तु सत्य ही है।
भारत निवासियों की जननी भी तू सही है॥
है वन्दिता उचित ही तू नित स्वदेश जन से।
पूजित प्रसून दल फल सद्‌भाव स्वच्छ मन से॥१॥

देशोपकार के हित हे मात मोद वारी।
हिम शैल रम्य तज कर तू देश में पधारी॥
भारत वसुन्धरा की शृंगार रूप तू है।
सचमुच अमर पुरी की सरिता अनूप तू है॥२॥

वह पुण्यमय मही जो तेरी जलस्थली है।
स्वर्गस्थली को भी कब सौभाग्य वह मिली है॥
तेरी विचित्र धारा सुललित तरंग माला।
मानस विकार दमनी शमनी विषाद ज्वाला॥३॥

तव कूल पुण्य धरणी मन मोहनी सुरम्या।
हरिजन सुवास पावन नित पतित पाप दम्या॥
कूलाश्रमी कृषक जन यश तेरा गा रहे हैं।
सेवा प्रसाद तुझसे जो नित्य पारहे हैं॥४॥

जल वृद्धि से जहाँ तक भू भाग लस रहा है।
उस उर्वरा मही पर सोना बरस रहा है॥
व्यापार पर भी देवी! उपकार तव अमित है।
नौका सघन प्रचालित जलबल से तेरे नित है॥५॥

पावन तेरे सलिल का सुख स्वाद क्या बतावें।
यह देव-दुर्लभामृत जन पुण्य बल से पावें॥
जब भारतीय जन का है अन्तकाल आता।
निर्जीव तन निरख कर परिवार भी घिनाता॥६॥

तब तू उन्हें सुलाती निज गोद में सुमाता।
तेरी सुयश कथा का कह कौन पार पाता॥
जीते सहस्र सुखदे मरने प गोद में ले।
यम लोक से बचाती सुर लोक में सुथल दे॥७॥

दर्शन से तेरे जननी चित निच शान्ति पाता।
हरि भक्ति उर उदय हो होती है मुक्ति दाता।
यों मुक्ति दायिनी भी कहना तुझे उचित है।
गुण गान क्या हो जितना भारत का तुझसे हित है॥८॥

चरणारविन्द हरि की जलबिन्दु जो न होती।
अगणित कुरोग कैसे निज वारिवर से खोती॥
करके अमित परीक्षा विज्ञान दर्शियों ने।
जैसे किया हमारे पूर्वज महर्षियों ने॥९॥

बतला दिया न इस में सन्देह एक तिल है।
संसार में कहीं भी ऐसा नहीं सलिल है॥
निर्मल पवित्र पावन चित स्वच्छ शान्ति कारी।
रुज-भय-भविष्य नाशक मानस विकार हारी॥१०॥

लाया तुझे भगीरथ इसमें विवाद क्या है।
कैसे सुयेज़ कैनल थल काट के बहा है॥
महिमा अगम अनूपम, मुनिवर तेरा बताते।
सुर, यक्ष, नाग, किन्नर गुणगान नित सुनाते॥११॥

नदियाँ अनेक सेवा में तेरी शीश के बल।
होतीं सदा निछावर लेले स्ववारि निर्मल॥
जिसके प्रसाद तुझसे गौरव समान पातीं।
तव अंग संग अपनी शोभा अमित बढ़ातीं॥१२॥

रवि नन्दिनी रंगीली तुझ से जहाँ मिली है।
गल बाहियाँ लगाकर इक संग जब चली है॥
वैसी अनूप गोरी श्यामा सखी की जोड़ी।
रवि चन्द्र की दृगों ने देखी हैं और थोड़ी॥१३॥

मातेश्वरी बता दे इस देश का पुराना ।
कुछ हाल तू ने देखा है पूर्व का ज़माना ॥
रघु, राम, कृष्ण, यादव पाण्डव अशोक विक्रम ।
भाजादि राज्य वैभव देखा है तू ने सक्रम ॥४॥

मै पूछता हूं जननी उस भूत काल में भी ।
भारत कभी फंसा था यों दुःख जाल में भी ॥
वह राज पाट वैभव वह सम्पदा हमारी ।
सोने के दिव्य मन्दिर रत्नों की चित्रकारी ॥१५॥

विद्या की वह कलायें संसार क्षोभकारी ।
वह शिल्प ज्ञान अद्भुत वह सभ्यता हमारी ॥
विज्ञान गूढ़ दर्शन वेदादि ज्ञान गौरव ।
वह धर्म धैर्य जिसका था देव लोक में रव ॥१६॥

वह राज्य नीति अद्भुत नय मूल निर्विकारी ।
स्वर्गीय राज्य शासन राजा प्रजा सुखारी ॥
वह भीष्म तेरा बेटा वर-वीर ब्रह्मचारी ।
भीमार्जुन अश्वथामा कृप द्रोण धनुष धारी ॥१७॥

अभिमन्यु वीर बालक भूरिश्रवा सुशर्मा ।
शार्दूल शल्य पुरजित कर्णादि कृतवर्मा ॥
वह वीर विश्व वन्दित राणाप्रताप नर वर ।
शिवराज काँपता था यमनेश जिस से थर थर ॥१८॥

इस देश के हमारे वे रत्न राशि सारे ।
हम को अनाथ तज कर किस लोक को सिधारे ॥
वीर प्रसवनियाँ वे वीरा स्वदेश ललना ।
स्वर्गीय देवियों में होती थी जिनकी गणना ॥१९॥

क्या हो गई बता दे भारत को करके सूना।
छोड़ा नहीं उन्होंने हा एक भी नमूना ॥
अब पुत्रियाँ उन्हीं की हैं देश को लजातीं।
कौआ से आप डरती हौआ से शिशु डरातीं ॥२०॥

क्या क्या तुझे बतावें तू आप देखती है।
अपने सुवास थल की दुष्ताप देखती है ॥
गंगे! यही सनातन नैनों के गुण विशेष।
देखा था तूने वह भी अब तू ही यह भी देख ॥२१॥

प्रभातशायी कन्या

(१)

उठ प्यारी लली लख भानु उदय।
प्रिय पावन भावन देव समय ॥
शिशु सूर्य सुमण्डल लाल छटा।
है शोभित नील अकाश-अटा ॥

(२)

प्राची दिशि की छवि देख सही।
द्युति विद्रुम कंचुक धार रही ॥
अति शीतल मन्द सुगन्ध भरा।
मारुत भूमण्डल चूम रहा ॥

(३)

क्या मङ्गल दृश्य प्रमोद—प्रदा।
बरसे नभ से ज्यों गुप्त सुधा।
आनन्द उमङ्ग प्रवाह महा—
सब के उर अन्तर जात बहा ॥

(४)

शोकाकुल चिन्तित रुग्ण सभी।
जिनके चित चैन मिला न कभी॥
उनके हिय भी सुख शान्ति कला—
प्रकटी; क्षण एक विषाद टला॥

(५)

श्यामल दुर्वादल अवनि ढके।
शोभा उनकी कह कौन सके॥
जल बिन्दु पड़े अति भाते हैं।
मुक्ता फल—युक्त दिखाते हैं॥

(६)

गत जान निशा खग नीड़ तजे।
मृदु पत्त सुअम्बर अंग सजे॥
रवि स्वागत को नभ द्वार उड़े।
यश गान सुनावत व्योम अड़े॥

(७)

चकवी निज प्रीतम संग मिली।
कहती निशि ज्यों विरहाग्नि जली॥
विकसे सर संयुत कञ्जु प्रिये।
अलि वृन्द जुड़े आनन्द हिये॥

(८)

हरि मन्दिर दुन्दुभि शंख बजे।
योगी जन शून्य-समाधि सजे॥
हरि भक्त विनय प्रभु की करते।
आनन्द उमङ्ग हिये भरते॥

(९)

कृषकार धरे हल कन्ध चले।
बलिवर्द युगल कर अग्र भले॥
पहुंचे वह कर अति मन्द गती।
जहं धान्य प्रदा महि भाग्यवती॥

(१०)

पय—पात्र लिये गोपाल-सुता।
निकसी गृह से अति हर्ष युता॥
आई जहँ धेनु सवत्स खड़ी।
दुह दूध रही आनन्द भरी॥

(११)

घर का शिशु नग्न प्रफुल्ल हिये।
दौड़ा अपने कर पात्र लिये॥
कहता भगिनी से लिपट गले।
दी दी दे दूध हमें पहले॥

(१२)

पशु कीट पतंग विहंग जगे।
उठ बाल सभी निज पाठ लगे॥
तू सो कर क्या सुख पा लेगी।
दृग लाभ अमूल्य गँवा देगी॥

—:०:—

स्त्री-अधिकार

थी ग्रीष्म की रजनी सुखद भागीरथी का तीर था ।
उद्यान तट का रम्य, चलता मन्द मन्द समीर था ॥
थे व्योम में आसीन रजनी-नाथ पूर्ण प्रकाश से ।
थी चाँदनी छिटकी धरातल पर विशद आकाश से ॥

दायें बिमल जल जाह्नवी का प्रिय सुललित प्रवाह था ।
ध्वनि नीर कल कल अति मनोहर शोक पुञ्ज-प्रदाह था ॥
इक याम से भी अल्प से ही यामिनी का राज्य था ।
तो भी दुराज दिनेश का विस्मरण सब दुख-साज था ॥

तृण शून्य रज कण रहित तट की भूमि दिनकर-ताप से ।
जो दिवस में थी जल रही व्याकुल विकट सन्ताप से ॥
वह शीतला की मूर्ति सुखमय शान्तिमय थी बन रही ।
पी साम अवित पियूष मानो मुग्ध कृत कृत मन रही ॥

उद्यान से कुछ दूर पर इक धवल धाम विचित्र था ।
जो शिल्पकारी की कला का एक सुन्दर चित्र था ॥
उस रुचिर मदन-सदन विमोहन भवन शोभा मूल के ।
चारो दिशा में थे लगे द्रुम-वृन्द सुरभित फूल के ॥

जिनके सुगन्ध-समीर से सु स्थान वह भरपूर था ।
कैलास तुल्य सुरम्य वह थल विमल सुखमा मूर था ॥
उस भवन से छिपका क्षपाकर-मूर्ति सी दो मूर्तियाँ ।
दबती हुई करती दबे पाँवों से मग की पूर्तियाँ ॥

निकलीं सशंकित संकुचित गृह-गुरजनों के त्रास से।
कूल स्थली में आगई शुचि वायु सेवन आस से॥
छवि-छटा दम्पति की वहाँ यों थी प्रभा उत्पादिनी।
मानो झलक उट्ठी द्विगुण उस चाँदनी में चाँदनी॥

उस पुरुष का था नाम "शेखर" "सती" नामा भामिनी।
द्युति काम-मोहन नाहवर रतिरूप मोहन कामिनी॥
कर में परस्पर कर दिये जोड़ा, विचित्र मराल से।
इत उत भ्रमण करने लगे सानन्द मधुरी चाल से॥

फिर सती परम प्रियम्वदा हँस कर मधुर आलाप से।
कहने लगी, "प्राणेश! मेरा प्रश्न है इक आप से॥
यह आज कल जो देश में फैला नवीन विचार है।
अर्थात् 'नारी पुरुष सब का तुल्य ही अधिकार है'॥

इस विषय में हृदयेश की सम्मति नहीं मैं जानती।
इस वास्ते, सत असत मैं इसको नहीं कुछ मानती॥
कृपया मुझे बतलाइये इस बात में कुछ सार है।
या पश्चमीय-कुतर्क-प्रिय सुजनों का बुद्धि विकार है॥"

सुन कर सती की बात शेखर शोच में कुछ पड़ गया।
चलते हुए पग रोक सहसा राह में वह अड़ गया॥
फिर मुस्करा कर नम्रता से कहा शेखर ने 'प्रिये!
कह क्यों नहीं सकता हुँ कुछ पर सकुच है मेरे हिये॥

इसमें नहीं सन्देह प्यारी विषय परम पवित्र है।
नर-नारि के जीवन समर विजयार्थ प्रश्न विचित्र है॥
डर है मेरे मन में यही तुम पक्षपात न जान लो।
मैं पुरुष हूं बातें मेरी निज-स्वार्थ-रत मत मान लो॥"

बोली सती; "प्राणेश ! कहते आप कैसी बात हैं ।
मुझ से छिपा है आप जैसे धर्मविद् विख्यात हैं ॥
जो आप कहियेगा वही मेरे लिये गुरु मन्त्र है ।
मैं जानती हूं आप का मन न्यायशील स्वतंत्र है ॥ "

जो कुछ कहा पति ने सुना, उसको प्रिया ने प्यार से ।
बातें वही अब मैं सुना देता हूं फिर संसार से—
"देखो प्रिये ! प्राचीन मत है सांख्य दर्शन का यही ।
यह सृष्टि पुरुष प्रकृति से मिल कर है बनी प्रत्यक्ष ही ॥

पर पुरुष अंश स्वतन्त्र प्रबल, सशक्त मूलाधार है ।
उसकी प्रकृत परतन्त्र रह कर सृज रही संसार है ॥
है पुरुष चेतन धार, प्रकृति-आधार है उस धार की ।
इस मेल से दोनों की है रचना हुई संसार की ॥

उस पुरुष को इस प्रकृति के ही आश्रय सन्तोष है ।
है पुरुष जीवन, प्रकृति जीवन-यन्त्र, जीवन कोष है ॥
है प्रकृति अबला तदपि पाकर ज्ञान पुरुष सशक्ति से ।
कैसा विचित्र चरित्र करती पुरुष के बल भक्ति से ॥

अब सोच लो यदि एक का उनमें कदापि अभाव हो ।
फिर सृष्टि-रचना कार्य का किस भाँति से ठहराव हो ॥
जब एक के बिन दूसरे की शक्ति ही बेकार है ।
फिर क्या हुआ यदि पुरुष का कुछ अधिकतर अधिकार है ॥

अधिकार दोनों का विलक्षण कार्य-क्रम में तुल्य है ।
हर एक अपनी योग्यता अनुसार परम अमूल्य है ॥
कम बेश नारी पुरुष का भी वैसही व्यवहार है ।
उस आदि के आदर्श पर ही विश्व का विस्तार है ॥

दो वर्ग नारी पुरुष के विधि ने रचे दो भाव से।
संगठन उनके हैं जुदा गुण, कर्म और स्वभाव से॥
पर सम्मिलित निज शक्ति के दोनों अपूर्व प्रयोग से।
करते प्रकट हैं एक ही परिणाम शुभ संयोग से॥

सहधर्मिणी पति की प्रिया इसे हेतु ही विख्यात है।
सम्बन्ध कैसा योग्य हैं यह सोचने की बात है॥
है एक का कर्तव्य तिल भर दूसरे से कम नहीं।
पर एकता दोनों में है यह मान सकते हम नहीं॥

अन्तर बहुत कुछ है प्रिये! नारी पुरुष के धर्म में।
हैं श्रेष्ठता में सम, असम है किन्तु वे गुण कर्म में॥
ले एक का पद दूसरा यह तो कभी सम्भव नहीं।
इस नियम के प्रतिकूल प्यारी! नियम का उद्भव नहीं॥

गेहूं फलेगा जव न जव गेहूं फलेगा युक्ति से।
यों तो सहज है बात कह देना प्रिये! अत्युक्ति से॥
अति शौर्य, साहस श्रम, कठिनता मुख्य पुरुष स्वभाव हैं।
लालित्य, मोहकता, सरलता, सौख्य नारी भाव हैं॥

क्या चाहते हैं सुजन उलटा विधि-रचित अधिकार हो।
रमणी रणस्थल में खड़ी हो पुरुष का शृंगार हो॥
या राज्य-शासन कठिन कार्य करें सकल सुकुमारियाँ।
भण्डार की रक्षा करें नित बैठ महलों में मियाँ॥

अथवा अबल मस्तिष्क वाली राजनीति रहस्य पर।
लेक्चर सुनावें पुरुष गावें गीत घर में बैठ कर॥
महिला गवरनर जज कलेक्टर और कर्नल जो बनें।
तत्काल के जन्मे हुए शिशु गोद में किसकी पलें।

फिर कौन पाले कौन पोषे कौन शिक्षा भार ले।
किस स्तन से पावें दूध वे अब कौन यह अधिकार ले॥
प्यारी ! प्रकृति अनुकूल ही कर्तव्य कर्म महान है।
प्रतिकूलता में विघ्न बाधा कष्ट का उत्थान है॥

हैं जोतते हल बैल ही नहिं गाय का अधिकार है।
यों दो कियारी जोत लेना खेल का व्यवहार है॥
शीतोष्ण, वर्षा बात सहना पुरुष ही का काम है।
जो नारि को सहना पड़े तो दुःख ही परिणाम है॥

क्या लाभ है जो पुरुष का कर्तव्य नारी भी करे।
क्या नारि के कर्तव्य कम हैं पुरुष से गौरव भरे॥
जो नारि हैं निज धर्म से कर्तव्य अपना पालतीं।
क्या पुरुष से भी उच्च पद पर पद नहीं वे डालतीं॥

कुछ नारियाँ जग में हुईं, हैं भी, बहुत सच बात है।
कर्तव्य जिनका पुरुष का सा ही हुआ विख्यात है॥
पर कुछ समय ही के लिये वह भी कठिन दुख काल में।
जातीय गौरव, देश गौरव, धर्म के प्रतिपाल में॥

झाँसी की रानी की कथा या चाँद बाबी की क्रिया।
जग विदित है कुछ और भी दस बीस ऐसी हैं, प्रिया
पर यह विरल दृष्टान्त जाति समूह पर घटता नहीं
ज्यों रत्न के रोड़ों से सूखा सर कहीं पटता नहीं

जिस देश में कर्तव्य नर का नारि को करना पड़ा
उन्नति हुई उस देश की या वह रसातल में गड़ा'
कुछ अङ्ग में कर्तव्य दोनों का अवश्य समान है
फिर भी विलक्ष भाव का उसमें भी कुछ अनुमान है

नारी पढ़ें गुण ढंग सीखें सभ्य सज्ञानी बनें।
संसार में होता है क्या इसमें न अज्ञानी बनें॥
घर को बनावें स्वर्ग सम सन्तान की शिक्षा करें।
नित नीत, धर्म, विवेक शौच प्रकृति की रक्षा करें॥

निज दयामय बर्ताव से परिवार को सुख दान दें।
आदर्श बन कर पूर्ववत निज देश को अभिमान दें॥
करने को उनके काम कम है? वह करें तो धन्य है।
नारी सदा से नर-प्रिया सह-धर्मिणी सम्पन्न है॥

हाँ, एक बिन्दु कलंक का इस देश के है भाल में।
अधिकार कुछ उनके फँसे हैं मूर्खता के जाल में॥
अधिकार पहला "पठन, पाठन" है "स्वयम्बर" दूसरा।
फिर "मान आदर प्राप्त करने का" विचारो तीसरा॥

अधिकार चौथा "मुक्त होना कठिन कारागार से।"
हैं पुरुष जिसके दोष भागी बन रहे संसार से॥
अज्ञान रखना नारियों को देश भर का पाप है।
नारी बनी है मूर्ख नर को भी कठिन सन्ताप है॥

जो ऋषि प्रणीत विचित्र रीति रही स्वयम्बर की, प्रिये!
जब से उठी वह हाय! अत्याचार कितने हैं हुये॥
चाहे असभ्य, कुरूप, निर्धन, दुष्ट बूढ़ा वर रहे।
क्या ताब उस सम्बन्ध में दीना कुमारी चूँ कहे॥

जिस भाँति अबला जाति का इस देश में अपमान है।
उस पाप का भरपूर फल नित दे रहा भगवान है॥
कन्या प्रसव के कालही से घृणा मूर्ति विशाल है।
परिवार को तो छोड दो माँ बाप का यह हाल है॥

परदे ने अत्याचार जैसा नारियों पर है किया।
उस दुःख का विस्तार तुम से मैं कहूं कैसे प्रिया॥
क़ैदी बनी मैं घर में उनका चाम तक तो सड़ गया।
परदा न जाने बुद्धि पर मरदों के कैसे पड़ गया॥

तुमही कहो घर में पसीने में थीं कैसी नम हुई।
पर क्या यहाँ तक तुमको आने में कठिनता कम हुई॥
इस विषय पर सब नारियों को ध्यान देना चाहिये।
जैसे मिलें अधिकार अपना शीघ्र लेना चाहिये॥"

व्याख्यान शेखर का सुना जब, सती विह्वल हो गई।
संशय हुए सब दूर उसकी बुद्धि निर्मल हो गई॥



महिला मनोरमा

(गद्य-भाग)



अभ्यास



इस संसार में किसी विषय का निर्णय और विचार वा किसी कार्य का नियम जान लेना इतना कठिन नहीं है, जितना उस निर्णय वा विचार के अनुकूल बर्ताव और उस नियम के अनुसार काम करना मुश्किल है—हम लोग प्रति दिन देखा करते हैं कि एक बढ़ई अपने आरी, बसूला वा रन्दा का प्रयोग काठ पर किस तरह करता है, दरज़ी कपड़े के ऊपर अपनी सूई किस तरह गड़ाता है और चित्र-कार कागज़ व पटादि पर किस भाँति पतली पतली लकीरें खींच कर सुन्दर चित्र बना देता है, और एक लिखने वाला अपनी लेखनी कागज़ पर चलाते हुए किस भाँति अक्षरों का रूप प्रकाशित कर देता है, किन्तु यदि हम लोगों ने उन कामों को स्वयम् नहीं किया है, तो चाहे हम आरी, बसूला, सूई, तागा और लेखनी हाथ में लेकर घुमावें और चलावें तथापि न हम उस तरह काठ ही गढ सकते, न कपड़ा ही सी सकते और न अक्षर वा चित्र ही बना सकते हैं। इसी तरह हम सहस्रों

बार सुन चुके हैं कि सच बोलना बड़ा धर्म है, शील, सन्तोष, दया, क्षमा देवताओं के स्वभाव हैं और क्रोध, हिंसा, लोभ, कलह, ईर्षा आदि दैत्यों के लक्षण हैं, किन्तु हम लोग यह सिद्ध विचार जानते हुए भी सदा सच नहीं बोलते। शील, सन्तोष, क्षमा और दया आदि के समय पर चूक जाते हैं, अवसर पाकर बुरे स्वभाव भी जग जाते हैं और हमको अपने विषय प्रवाह में बहा ले जाते हैं। अब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इसका मूल कारण क्या है? जानना चाहिए कि इसका कारण दूसरा कुछ नहीं, केवल अभ्यास का अभाव है। किसी कार्य के करने की रीति जान लेना, किसी विचार का भाव समझ लेना, किसी तत्व वा द्रव्य का गुण और स्वभाव विचार लेना विद्या का प्राप्त करना है, और जिस युक्ति से उस विद्या का अर्थ साध्य और सफल होता है, उसी का नाम अभ्यास है। अभ्यास की मूल समालोचना किसी काम को उसके नियम के अनुसार लगातार करके उसका सरल और साफ कर लेना वा किसी विचार को बार बार मनन करके उसको पुष्ट और परिपक्व बना लेना है। इस अभ्यास में अपरम्पार और अद्भुत शक्ति है। इसके प्रबल प्रताप से मनुष्य ने इस दुनियाँ में ऐसे ऐसे आश्चर्यदायक चमत्कार प्रकट करके दिखला दिये हैं, जिनको देखते और सुनते ही बुद्धि चक्कर में आ जाती है। आजकल यह रेल, तार, उड़नखटोला, ग्रामोफोन, टेलिफोन और विविध कलाओं के अनेकों आविष्कार और कल, यन्त्र, कारीगरी और नाट्य क्रिया आदि जो देखने और सुनने में आते हैं, ये सब इसी अभ्यास और तजरुबे के प्रतिफल हैं। इसके दो प्रकार कहे जा सकते हैं। एक शारीरिक, दूसरा मानसिक। शारी

रिक अभ्यास वह है, जो शरीर से किया जाता है। जिस तरह कारीगर अपनी चीजों को बार बार बनाने से अन्त में उस काम के ढंग को सुगम और स्वच्छ कर लेता है और उसकी निपुणता में कोई काम शेष नहीं रहता। देखो, जब कोई लड़का लिखना सीखने लगता है, तो वह पहले अक्षरों का आकार कैसा टेढ़ा मेढ़ा बनाता है किन्तु कुछ दिन पीछे अभ्यास बढ़ाते बढ़ाते कैसे सुंदर और विचित्र अक्षर लिखने सीख जाता है; और फिर लिखते समय कोई कठिनता उसके सम्मुख उपस्थित नहीं होती। मानसिक अभ्यासों की रीति भी लगभग ऐसी ही समझनी चाहिए। मान लो कि आज किसी आदमी ने सच बोलने वा क्रोध रोकने का मन में संकल्प किया, वा किसी स्त्री ने पातिव्रत धर्म के साधन का अनुष्ठान किया और उन्होंने इनमें अपना अभ्यास आरम्भ कर दिया, अब यह निश्चय है कि उनको अपने इस अभीष्ट साधन में पहले बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ जान पड़ेंगी, बार बार उनको अपना संकल्प विस्मरण हो जावेगा, वे भूल भूल कर झूठ बोल देंगे क्रोध कर बैठेंगे, अनरीति का बर्ताव कर डालेंगे, किन्तु यदि उनका संकल्प दृढ़ है, तो बार बार अपनी चूक पर पछतावा करके ग्लानि-ग्रस्त होंगे, और फिर पहले से विशेष सावधानी और दृढ़ता से अपने अभ्यास में लगेंगे, और फिर गिरते पड़ते भूलते चूकते अभ्यास बढ़ाते जावेंगे, और क्षण क्षण अभीष्ट अङ्ग उन्नति करते और विपरीत अङ्ग दबते चले जावेंगे। फिर कुछ काल के निरन्तर अभ्यास सच बोलना उनका स्वभाव हो जावेगा। क्रोध मन में उत्पन्न ही नहीं होगा। और स्त्री का पति के प्रति विनय, प्रेम, सद्भाव प्रकृति से बन जावेंगे और फिर मरते दम तक ये भाव उनसे

अलग न हो सकेंगे। इसके अतिरिक्त इस मानसिक अभ्यास के अनेक दृष्टान्त हो सकते हैं। आजकल विज्ञान सम्बन्धी, राज सम्बन्धी, उद्योग, धर्म और समाज सम्बन्धी अनेक विचारों के जो आविष्कार हो रहे हैं और लोग उन विचारों को सिद्ध रूप दिखला कर संसार को मोहित कर रहे हैं, वे सब इसी मानसिक अभ्यास और तजरुबे के फल हैं।

अब यह भी जानना चाहिए कि इस अभ्यास साधन का मूल मसाला मन है। बिना इसके साथ दिये शारीरिक वा मानसिक कोई अभ्यास भी सिद्ध और सफल नहीं हो सकता। यह मन ही इस अभ्यास का परम सहायक और परम शत्रु है, किन्तु इस मन का स्वभाव बड़ा ही नीच है। जिस तरह नीच आदमी बिना दबाये और दण्ड दिये सीधे से काम नहीं देता, उसी तरह यह मन भी बिना रगड़े माँजे सानुकूल होकर काम नहीं देता। यह पहले ताल ठोंक कर अभ्यासियों के पीछे पड़ जाता है, और उचाट, निराशता, कुढ़न, क्रोध, चंचलता और अहंकार का रुप धारण कर अभ्यासी को अपने अभीष्ट से विमुख और निरुत्साह कर देता है। पर जो लोग इसकी दुष्टता पहचान लेते हैं, वे इसके भयानक रुप से निडर होकर इसको दबा लेते हैं। थोड़ी देर तक तो यह खूब छटपटाता और मचलता है, और अनेक पाखण्डी कलाएँ प्रकट करता है, पर जब हार जाता है, तो सीधा होकर सहायक बन जाता है और शान्ति, धैर्य, साहस, उमङ्ग और उत्साह का रुप दिखा कर अभ्यासी को पूर्णतया उसके अभीष्ट में कृत-कार्य्य कर देता है। अतएव कार्य के अभ्यास में इस मन के वश करने का अभ्यास भी साथ ही साथ करना पड़ता है और इसी के अभ्यास से कर्मयोग की सफलता होती है। अब एक

बात और समझ लो, कि इस मन की उलटी सीधी कलाएँ हर अभ्यास में प्रकट नहीं होतीं। यह अपनी नटवर कला केवल सात्विक अभ्यासों में ही दिखलाता है। असात्विक अभ्यासों में यह पहले ही अपना उत्साह और उमङ्ग की कला दिखला देता है और अभ्यासी शीघ्र ही अनन्त उन्नति करने लगता है। इसके दृष्टान्त में संसार के कामी, चोर, जुआरी, कलहकारी, हिंसक आदि प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इस तरह के विकारी अभ्यासों में अभ्यासी थोड़े ही परिश्रम में अद्भुत सफलता प्राप्त कर लेता है। इसका कारण यही है कि नीच नीच के संग जल्द मिलता है। फिर जब मन नीच है, तो नीच व्यवहारों मे उसका सहायक बनना आवश्यक और प्राकृतिक है। यही कारण है कि जब मनुष्य पढने लिखने या किसी सत्कार्य में अभ्यास करने लगता है, तो यह मन अनेकों विघ्न उठाता है। किन्तु खेल, कूद, निन्दा, कलह, चोरी, हिंसा और दूसरे निन्दित कामों में कितना जल्द सहायक बन जाता है। किसी विद्या का असली और मूल फल यही है कि तुम कार्य रूप में अभ्यास करके उनको हितकर और सार्थक बना लो। बहुत किताबें पढ़ने और ज्ञान की बातें सुनने से मनुष्य सच्चा विद्वान और गुणी नहीं कहा जा सकता, जब तक वह अभ्यास और तजरुबे से उसको लाभकारी न बना लेवे। अभ्यास हीन विद्वान उस बैल के समान है, जिसकी पीठ पर बहुत सी पुस्तकें लदी होती हैं, किन्तु वह उन ग्रन्थों से कोई अर्थ प्राप्त नहीं कर सकता है। केवल दीपक बत्ती रटने से प्रकाश नहीं होता, मिठाई मिठाई चिल्लाने से मुंह मीठा नहीं हो सकता और न केवल वाचक ज्ञान से हृदय प्रकाशित होता है, अतएव अभ्यास को मुख्य रक्खो। पहले थोड़ी देर तक मन

अवश्य विघ्न प्रकट करेगा, किन्तु जब उसको दबा कर अपना काम करती रहोगी, तो वह आप से आप दास बन कर शान्ति पूर्वक तुम्हारा साथ देगा। किन्तु बिना मन लगाये केवल शारीरिक श्रम से अभ्यास सिद्ध नहीं हो सकता, इस अभ्यास की समालोचना बहुत विस्तृत है। इसकी व्याख्या में ग्रन्थ के ग्रन्थ रचे गये हैं और इसके एक एक अंग पर कितने ग्रन्थ रचे जा सकते हैं। हमने इस छोटे से लेख में केवल इस अभ्यास के महत्व का इशारा मात्र दिखलाया है। हम इसके सर्वाङ्ग वर्णन करने में असमर्थ हैं। हम आशा करते हैं कि पाठिकाओं को अभ्यास के महत्व का कुछ परिचय हमारे इस लेख से अवश्य हो जायगा।



चटक सूझना

"अम्मा! चटक सूझना किसको कहते हैं?"

"एक बड़ी ही अमूल्य वस्तु है, बेटी शान्ता! तुझे अकस्मात् इसका ध्यान कैसे आ गया?" माता ने उत्तर दिया।

शान्ता—आज पाठशाला में गुरुआनी जी चन्द्रशीला सखी से उसकी नन्हीं बहिन सुमित्रा के आग से जल कर मरने का समाचार सुन विस्मित होकर कहने लगीं, "चन्द्रा! यदि तेरी माता को समय पर चटक-सूझने का अभ्यास होता तो बेचारी बच्ची सुमित्रा की जान सहज में न जाती।"

माता—हाँ शान्ता! यह शोक जनक घटना मैंने भी सुनी है। क्या कहूँ जब उस प्यारी बच्ची का ध्यान आ जाता है तो मेरे कलेजे में आग सी धधकने लगती है। उसकी मोहिनी मूर्ति, उसकी प्यारी प्यारी तोतली बातें, क्षण भर भी चित्त से नहीं उतरतीं। जब कभी मैं उसके घर जाती थी वह झट अपनी मा का अञ्चल पकड़ और मेरी ओर अंगुली दिखा दिखा कर और कूद कूद कहने लगती थी—"माई, चाई आई, माई, चाई आई,।" शान्ता! मुझे चाची की जगह उसका चाई का कहना नहीं भूलता। तेरी गुरुआनी बहुत सच कहती थीं, यदि उसकी मा को उस समय पर चटक-सूझ गया होता तो सुमित्रा की जान सहज में बच जाती।

शान्ता—अम्मा! सुमित्रा आग से जल कर कैसे मरी और यदि उसकी मा को चटक सूझा होता तो वह उसको कैसे बचा लेती?

माता—बेटी! पहले यह समझ ले कि चटक-सूझना

किसको कहते हैं, तब आगे की बातें सुगमता से समझ लेगी। देख, जब अचानक और अनायास कोई चिन्ता, प्रश्न वा दुर्घटना उपस्थित हो जावे, अर्थात एकाएक कोई ऐसा तरद्दुद फिक्र, आफ़त, मुसीबत या बलाय पैदा हो जावे, जिसकी पहले से कोई कल्पना वा आशा न हो, उस समय मन और बुद्धि को स्थिर कर शीघ्र उससे बचने या उसके निवारण करने की कोई युक्ति वा उपाय विचार कर लेने को चटक सूझना कहते हैं। और इसीको अंग्रेजी भाषा में (Presence of mind) प्रेजेन्स औफ माइण्ड यानी बुद्धि की सावधानी कहते है। इसे संसकृत में 'प्रत्युत्पन्नमति' कहते हैं। अब तो तू चटक सूझने का मतलब अच्छी तरह समझ गयी होगी।

शान्ता—हाँ, अम्मा, अब मैं भली भाँति समझ गयी।

माता—अब मैं तुझे सुमित्रा की शोकदायक मृत्यु की घटना सुनाती हूँ।

सुमित्रा की मा मिट्टी के तेल की डिब्बी जला कर रात में कोई पुस्तक पढ़ रही थी और सुमित्रा पास ही खेल रही थी। चन्द्रशीला रसोई बना रही थी और चन्द्रशीला के पिता कहीं बाहर टहलने गये थे। अकस्मात् सुमित्रा की माता के मन में यह संशय उत्पन्न हुआ कि बालबुद्धि चन्द्रशीला कहीं दाल में नमक अधिक न डाल दे। इससे वह दौड़ी हुई पाकशाला में चली गयी। इधर सुमित्रा ने एक पड़ी हुई सींक उठा ली और डिब्बी की लव पर जला कर उसका सन सन जलना देख देख प्रसन्न होने लगी। उसकी आस्तीन कुछ बड़ी थी जो अँगुलियों तक लटक आयी थी। वह सींक

जलते जलते आस्तीन तक पहुँच गयी और झट आस्तीन में आग लग गयी। आस्तीन जलते देख लड़की चिल्ला उठी और घबरा कर अपनी साड़ी पर हाथ पीटने लगी। फिर क्या था, साड़ी भी जल उठी। इतने में सुमित्रा की मा दौड़ी आयी। उसको जलती देख हक्का बक्का हो चिल्लाने लगी। तब तक आग और भी धधक गयी। सुमित्रा की मा बिलकुल विक्षिप्त सी बन गयी। एक मर्तबे उसने कुर्ती का बटन खोलना आरम्भ किया। घबराहट के मारे बटन न खुले तो साड़ी खोलने लगी। अन्त में न बटन खोल सकी, न साड़ी ही खुली। बेचारी कालग्रस्त लड़की सिर से पैर तक जल गयी और थोड़ी देर पीछे उसके प्राण निकल गये।

शान्ता! यदि उसकी माता इतनी न घबड़ा जाती और चट से सुमित्रा को पृथ्वी पर लोटा कर इधर उधर लुढ़का देती या कोई कम्बल या दरी ऊपर या चारों ओर से ओढ़ा देती तो सब आग आप से आप बुझ जाती और उसकी जान बच जाती। पर इतना चटक न सूझने के कारण उसकी प्यारी सुमित्रा सदा के लिए उसके हाथ से खो गयी।

शान्ता! इसी चटक सूझने की बदौलत बहुत से जीवों की रक्षा हो चुकी है। तुझे मालूम नहीं है, श्यामदत्त, जो हमारी पड़ोसिन धनदेवी का बेटा है, उसको परसाल पाखाने में साँप ने अँगुली में काट खाया था। उसने काटने के साथ ही चिल्ला कर धनदेवी को पुकारा, धनदेवी ने न तो शोर किया, न सिर धुना, झट एक तेज पतली छुरी से साँप के काटे हुए अङ्ग को बेदर्दी से चीर दिया। झट रुधिर की धार बाहर निकलने लगी और साँप का विष, जो काटते ही रुधिर के साथ मिल कर सारे शरीर में घूमने लगता है, और इसी

कारण से आदमी मर जाता है, वह रुधिर की धारा के साथ बाहर निकल गया और उसके रुधिर के साथ शरीर में व्याप्त न हो पाया और श्यामदत्त की जान बच गयी। यदि धनदेवी को यह चटक न सूझती और कुछ विलम्ब हो जाता तो फिर श्यामदत्त का बचना असम्भव हो जाता और फिर उसकी यह युक्ति भी फलीभूत न होती।

अब एक दूसरी घटना भी सुनाती हूं। तेरी ज्ञानवती मौसी के विवाह में हमारी बुआ देवहूती और मुहल्ले की लीलावती सखी दोनों कोठे के आगे वाले सायबान की पक्की छत पर खड़ी होकर कोठे की दीवार पर पास ही पास दो चित्र बना रही थीं। देवहूती बूआ ने एक मोर का चित्र परम सुन्दर और मनोहर बना कर तैयार कर लिया, पर लीलावती वाला चित्र अभी पूरा नहीं हुआ था; वह रंग की पियाली लिए अपने चित्र में कूची से रंग भर रही थी। मोर वाले चित्र के ठीक सामने छत की मुंडेरी दो तीन हाथ टूट गयी थी। देवहूती बूआ अपने चित्र की मनोहर सुन्दरता देख मुग्ध हो गयी थीं और चित्र की ओर टकटकी बाँधे पीछे की ओर खिसकती चली जाती थीं, और उनका चित्त अपने चित्र पर ऐसा आकर्षित हो गया था कि उनको दूसरी किसी वस्तु का ध्यान न था। इतने में लीलावती की दृष्टि उनके ऊपर जा पड़ी। उसने देखा कि बूआ छत की मुंडेरी की सीमा पर पहुँच गयी है और उनके नीचे जा गिरने में केवल एक पग पीछे हटने की देर और है। बस, इतनी ही देर में उसने सब कुछ सोच लिया और झट अपने रंग की प्याली उस मोर की चोंच और गरदन पर उडेल कर उसकी सारी शोभा नष्ट कर डाली। यह देखना था कि

बूआ मारे क्रोध के आग बबूला बन दाँत पीसती हुई आगे को दौड़ पड़ीं और लीलावती से उलझना ही चाहती थीं कि लीलावती ने नम्रता से उनको उनकी अनजान परन्तु प्राण-घाती आपत्ति से सूचित कर समझा दिया कि यह एक अन्तिम उपाय आपकी जान बचाने का मुझे सूझ पड़ा। मैं आपको पीछे-पाँव बढ़ाने से रोकती तो घूमने के साथ ही आप छत से नीचे जा रहतीं। फिर तो बूआ लज्जित होकर उसके चरण पर पड़ीं और बार बार अपनी कृतज्ञता प्रकट कर क्षमा माँगने लगी। क्यों शान्ता तूने इस युक्ति का भाव समझ लिया? यदि उस समय लीलावती 'हाँ, हाँ, बचो, बचो,' इत्यादि शब्दों से देवहूती को उनही दुर्घटना से सूचित करती तो बूआ तो चकपका कर शीघ्र ही छत के नीचे जा पड़तीं और उनके प्राण छुट जाते। वह जान गयी थी कि बूआ अपने चित्र पर बेसुध और मोहित हो रही हैं, और चित्र बिगड़ते देख वह पीछे हटने के बदले अवश्य आगे को दौड़ पड़ेंगी। और ऐसा ही हुआ भी।

शान्ता ने कहा, "अम्मा! ऐसी एक कहानी और भी सुना दो।"

माता बोली, "अच्छा सुन। अबकी अपने ननिहाल की एक अपूर्व घटना सुनाती हूँ। दीवार से दीवार मिली हुई हमारे नाना के एक दायाद गिरीश प्रसाद का मकान है। वह अपने घर के अकेल हैं और अभी उनकी अवस्था २५। २६ वर्ष की है। उनकी पत्नी का नाम शारदादेवी है। वह बड़ी ही रूपवती और बुद्धिमती स्त्री है। उसी गाँव में गोविन्द प्रसाद एक बड़ा धनवान पुरुष रहता था। किन्तु ऐसा प्रसिद्ध पापात्मा और दुराचारी निकला कि उसने अपनी

सारी सम्पत्ति कुमार्ग ही में नाश कर डाली। एक रात को गाँव में कठपुतली का तमाशा हो रहा था। गिरीश तमाशा देखने चले गये थे। शारदा अकेली घर में पलँग पर लेटी हुई पति की प्रतीक्षा कर रही थी। दीप बुझ गया था और किवाड़ अधखुले भिड़े हुए थे। पापी गोविन्द को, जो बहुत दिनों से पाप चेष्टा में लगा हुआ था, मालूम हो गया कि गिरीश घर पर नहीं है। सो वह गिरीश का वेष बना कर उनके घर में घुसा और शारदा के कमरे में जाकर साधारण रीति से उसके पलँग पर जा लेटा। शारदा तुरन्त उसके आचरण और शरीर की विलक्षणता से ताड़ गयी कि गिरीश की जगह वेष बदले हुए कोई दूसरा पुरुष है, और कपट चरित्र करने आया है। किन्तु उसने भय वा आश्चर्य का कोई भाव प्रकट न किया और पल ही भर में उसने अपनी रक्षा का सारा उपाय सोच लिया। उसने कुछ आश्चर्य प्रकट कर कहा, "क्या आज तमाकू न पिओगे? कदाचित् यह समझते हो कि आग नहीं है, सो नहीं; मैंने आग बना रक्खी है; कहो तो भर लाऊँ।" गोविन्द ने सोचा, "मालूम होता है गिरीश सोने के पहले तमाकू पिया करता है। उसने आहिस्ते से कहा, "हाँ" यह सुन कर शारदा शय्या से उठ कर साधारण भाव से चल कर कमरे के बाहर निकल आयी और पलक भी गिरने न पाये थे कि उसने झट किवाड बन्द कर बाहर से साँकल चढ़ा दी। जब इस तरह उसने गोविन्द को भली भाँति अपना बन्दी बना लिया तब किवाड़ के पास खड़ी हो उच्च स्वर से बोली, तये प्यारे रसिक अजी उलूक नन्दन! मैं तुम्हारे लिए बड़ी तेज़ आग तैयार कर रही हूँ। आज ऐसा मज़ेदार तमाकू पिलाऊँगी कि जन्म

भर कलेजे का धुआँ मुँह से निकालते रहोगे, और आज का मजा उम्र भर न भूलोगे। तुम नहीं जानते कि किसी सती युवती का प्रेम-पियूष कामी कुत्ते का भाग नहीं है। उसका अधिकारी त्रिलोक में एक ही होता है। कुत्तों के चाटने के लिए जूठे पात्र अनार्य रमणियों के घर मिलेंगे, आर्य महिलाओं के पवित्र मन्दिर में उनका मिलना सम्भव नहीं है। याद रक्खो, चाहे इस आर्य जाति का चिह्न दुनिया से मिट जावे, पर उसकी रमणियों की सत्कीर्ति कदापि नहीं मिटेगी, आर्य ललना कभी पतित नही होगी, और यदि ऐसा देख पड़े तो समझ लेना, और निश्चय समझ लेना, कि उसकी नसों में आर्य शोणित कदापि नहीं है। केशरी के वीर्य से कुतिया पैदा हो, यह हो नहीं सकता।"

इतनी बातें सुनते सुनते शान्ता को रोमाञ्च हो गया और बीच से बात काट कर आतुरभाव से पूछने लगी, "अम्मा! मैं कौन हूं?" माता उसके हृदय का गूढ भाव समझ गयी और पीठ ठोक कर बोली, "बेटी! तू भी वही आर्य-शोणितमयी पवित्र मूर्ति है। शारदा की बातें भूलियो मत"।

इस समय शान्ता विह्वल हो गयी। उसका चेहरा कमल सा खिल गया फिर रोमाञ्च हो गया और उसके नेत्रों से टप टप आँसुओं की बूँदें पृथ्वी पर टपकने लगीं।

हमारी पाठिकाएँ शान्ता का लोम-हर्षण (रोंगटे खड़े करने वाला) रहस्य तो समझ ही गयी होंगी। संसार के स्त्री-पुरुष अपनी जाति की माताओं और पुरुषाओं के साधारण गौरव सुन कर भी प्रफुल्लित हो जाते है, तो आर्य युवती अपनी माताओं का विश्व-विमोहन सदूचरित्र, अलौकिक सद्गुन, आश्चर्यदायक उच्च विचार सुन कर रोमाञ्चित न

हो, यह कैसे हो सकता है? अब मैं फिर उस स्थान पर पहुँचता हूँ जहाँ शान्ता ने अपने नये प्रश्न से माता की कथा का प्रवाह रोक दिया था।

शान्ता की माता कहने लगी कि जब गोविन्द ने शारदा की मर्मभेदी बातें सुनी, उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगी। तमाकू का नाम सुनते ही सिर घूमने लगा, मुँह धुआँ हो गया, और चारों ओर अँधेरा छा गया, न आगे सूझता था न पीछे। उस असहाय अवस्था में उसका कोई साथी नहीं था। केवल एक पाप उसका पुराना सखा कभी कभी अनेक भयानक वेष में दाहिने बाँयें विष भरी मुसक्यान से मुसकराता हुआ झलक दिखला जाता था, और गोविन्द को बिना आग के जला रहा था। गोविन्द एक बार मन में संकल्प करने लगा, इस बार बच जाता तो फिर पाप-प्रेम को आजीवन तिलाञ्जलि देकर धर्म से प्रीति कर लेता। इस समय उसका सखा सूक्ष्म रूप में फिर प्रकट हुआ और मटक मटक कर व्यंगवाणी सुनाने लगा—"मित्र! जो प्राणी मुझसे आदि ही से अपरिचित हैं, मेरे प्रतिकूल जितना प्रण चाहे कर ले, मैं उसके निकट नहीं फटकता। वह मुझसे घृणा करता है और मैं उस के भय से काँपता हूं किन्तु, प्यारे गोविन्द! जिसने एक बार मुझे हृदय से लगा लिया, जिसने एक बार मेरा प्रेम रस चख लिया, मैं उससे निश्चिन्त हो जाता हूँ। वह संकट में पल भर के लिए मुझ से भले ही विरक्त बन ले, पर उस अवसर के टल जाने पर मैं उसे और वह मुझे कदापि त्याग नहीं सकता। वह मेरा पक्का दास बन जाता है और मैं उसे बलि का पशु बना लेता हूं। पहले खूब मोदक खिलाता हूं, सुगन्धित फूलों की माला से सजा कर उसका सुन्दर

शृंगार बना देता हूँ, उसका सौभाग्य जग जाता है, उसका रहते अनेक संकटों से भी उबार लेता हूँ, पर अन्त में मैं ही उसका कलेजा चीर कर रक्त पान भी करता हूं और यमलोक में पहुँचा कर दम लेता हूं। क्या तुमने संकटों के समय ऐसा ही झूठा संकल्प सैकड़ो बार नहीं किया है। पर याद करो, एक बार भी उन्हें पूरा कर सके हो? जो भोग आज भुगत रहे हो, यही तो मेरे प्रेम का अन्तिम परिणाम है, इसको संसार में कौन नहीं जानता? पीयूष मुख विष-कुम्भ तो मेरा नाम ही पड़ गया है। क्या तुमने नहीं सुना थ कि जो एक बार मेरा मुखामृत*प्रसाद पानकर लेता है, वह अफीमची तोता बन जाता है; वह दिन भर चाहे जहाँ उड़ा करे पर अमल की चाट की बेला वह पिँजरा छोड़ और कहीं नहीं रह सकता है। मेरी दीक्षा पाया हुआ चेला बड़े भाग से दूसरे मत का अनुयायी होता है। मेरे फन्दे में आकर फिर निकलना सहज नहीं है। और यदि किसी सौभाग्य से निकल भी जावे ता मेरा काला धब्बा लोक परलोक में कौन छुड़ा सकता है?"

निदान इधर तो गोविन्द और उसके पाप सखा में ऐसी ही गुप्त वार्त्तायें हो रही थीं, उधर शारदा ने दीवार के पास खड़ी हो कर मेरी नानी को जगाया। नानी उठ कर दौड़ी हुई आयी और पूछने लगी, 'बहू! इतनी रात को किस वास्ते जगाया है।' शारदा ने कहा "अम्मा जी! मेरे घर में रसिकाचार्य एक महात्मा पधारे है, और किवाड़ बन्द किये योग अभ्यास कर रहे हैं, लाला जी को जगा दीजिये। वह दो चार बलवान दण्डधारी पुरुषों को लेकर मेरे घर आ जावें और उनका दर्शन कर यथोचित सम्मान करें।" मेरी नानी बड़ी

---

* थूक।

सीधी सादी स्त्री थीं, कहने लगीं, "अरी बावली! मेरा तो भय और चिन्ता के मारे कलेजा उलटा जा रहा है और तुझे मखौलपन सूझा है! यह तेरी अटपट पहेली मेरी समझ में नहीं आती। जलदी सीधी सादी बातों में बता दे, बात क्या है? तब शारदा ने सारा वृतान्त सुना दिया। नानी "वाह, बेटी" वाह" कह कर दौड़ी गयी और अपने पति को जगा दिया, वह सुनते ही सात आठ आदमियों के साथ डंडा लिये शारदा के घर आ पहुँचे। किवाड़ खोले गये। गोविन्द की मुश्कें कस कर सब लोग उसे बाहर निकाल लाये। पहले तो आँगन में उनकी पूरी गोधन लीला हुई, फिर सारा गांव टूटा और सब लोग उसको पांच पांच लात लगाने लगे और दुर्वचनों और कटु शब्दों का तो क्या कहना था! भंगी तक ने भी बिना कुछ सत्कार किये न छोड़ा। जब गोविन्द मार खाते खाते फैल गया, नानी को दया आयी और सब को मना कर दिया। अन्त में गोविन्द पुलिस के हवाले हुए और फौजदारी सुपर्द हो पांच वर्ष के लिए जेलखाने को लद गये।

शान्ता यह सच्ची कहानी सुन अत्यन्त प्रसन्न होगयी और कहने लगी, "अम्मा! मैंने ऐसी अच्छी कहानी आज तक नहीं सुनी थी। तुम्हारे वचनामृत से मेरा मन तृप्त नहीं होता। यदि कष्ट न हो तो एक कहानी इसी विषय पर और सुना दो।",

माता ने कहा, "अच्छा, अब तुझे एक पुरानी पुनीत कथा सुनाती हूं। कौशल्या-नन्दन श्री रामचन्द्र जी जब गोद में थे, एक समय चांदनी रात में महारानी उनको गोद में लिए आँगन में खिला रही थी और रजनी-पति चन्द्रदेव अपनी पूर्ण कला से व्योमासन पर आसीन हो अपना शीतल और सुखद प्रकाश दिखा रहे थे। महारानी चन्द्रमा की ओर रामचन्द्र को दिखला

कर कहने लगी, "बेटी, देखो, यह चंदा मामा हैं। ये बड़े उपकारी हैं। यह आकाश में अमीलोर भरी चमकीली कटोरी लिये बच्चों को गुप्त रूप से अमृत रस पिला रहे हैं और उनका आनन्द बढ़ा रहे हैं। यह ईश्वर की पुनीत संजीवनी कला धारण किये जगत को शीतल शान्ति प्रदान किया करते हैं। अतः हम लोग इनको परमात्मा का अपूर्व उपहार समझ कर नमस्कार करते है और इनको देवता कहते हैं। इनको प्रणाम करके हम लोग ईश्वर के सर्वोपकारी उपहार का धन्यवाद देते है। तुम भी इनको प्रणाम करो।" रामचन्द्र ने प्रणाम करके कहा, "अम्मा! इनको मेरे निकट बुला दो। मैं इनका निकट से भी प्रणाम करूँगा।" यह सुन कर सब रानियाँ हँसने लगीं और उनको बहलाने लगीं। पर रामचन्द्र ने एक न सुनी और हठ कर रोने और पृथ्वी पर लोटने लगे। तब रानियाँ बहुत घबरायीं। महाराज दशरथ जी को बुलाया। उनके भी अनेक यत्न निष्फल हुए। तब महाराज ने अपने बड़े मन्त्री सुमन्त्र को जो सब में चतुर थे बुलाया। उन्होंने एक बड़ा सा आइना माँगा। दासी दौड़ी हुई आइना लायी। सुमन्त्र ने आइने को चन्द्रमा के सम्मुख कर रामचन्द्र के निकट खड़ा कर दिया और जब दर्पण में चन्द्रबिम्ब प्रकाशित हुआ, सुमन्त्र रामचन्द्र से कहने लगे, "लीजिए, चन्द्रदेव तो निकट आ गये अब इनको प्रणाम कर मनोभाव पूर्ण कर लीजिए।" निदान रामचन्द्र हर्षित हो चन्द्रमा को नमस्कार और प्यार कर सन्तुष्ट हो गये। उनका रोना मचलना एक तनिक सी बुद्धि की चतुराई से मिट गया। बेटी! चटक सूझने की शक्ति भी अभ्यास से बढ़ती है। तू भी इसमें अभ्यास और विचार किया कर। यह बड़े काम की वस्तु है।

वस्तुओं का मूल्य

उनके उचित और अनुचित प्रयोगों के अनुसार होता है।



चीन काल में किसी बड़े रेतीले मैदान में एक वट के पेड़ के नीचे एक बुढ़िया स्त्री फूँस की कुटी बना कर रहा करती थी। एक दिन प्रचण्ड ग्रीष्म ऋतु में दोपहर के समय एक युवक पथिक उसके आश्रम पर आया और बुढ़िया से बोला, "माता! मुझे थोड़ा सा जल दे दे।"

बुढ़िया ने पूछा, "क्या करोगे?"

उसने कहा, "मैं तमाकू पीना चाहता हूँ, मेरे नारियल का जल गिर गया है, अतएव नारियल में पानी भरने की इच्छा है।"

बुढ़िया ने कहा, "बेटा! मेरे पास जल नहीं है।" फिर मुसाफिर लाचार हो कर बिना जल के नारियल से ही तमाकू पीने का प्रबन्ध करने लगा।

इतने में दो और यात्री बुढ़िया के स्थान पर पहुँचे। उनका मुँह प्यास से बिलकुल सूख गया था, मुँह में थूक तक मौजूद न था, तालू चटक रहा था और मुंह से बात नहीं निकलती थी। धूप और प्यास के मारे उनके प्राण निकलने में कुछ भी देर नहीं जान पड़ती थी। निदान उन यात्रियों ने हाथ से जल का इशारा किया। बुढ़िया ने शीघ्र ही मिट्टी के दो शकोरों में अत्यन्त ठंडा जल एक घड़े से निकाल कर उन प्यासे पथिकों के आगे रख दिया। बेचारे यात्रियों ने शीघ्रता पूर्वक उस पवित्र और शीतल जल से अपनी प्यास शान्त कर बुढ़िया के चरणों पर सिर रख दिया और अनेक धन्यवाद देकर कहने लगे,

"माता! तुमने इस समय अपने अमृत रुपी जल से हम लोगों की जान बचा ली, नहीं तो हम लोगों के प्राण निकलने में कुछ भी विलम्ब न था।"

यह देखकर पहले मुसाफिरको बड़ा क्रोध हो आया और बुढिया से कहने लगा,"बुड्ढी! तू बड़ी दुष्टा जान पड़ती है। तू व्यर्थ तपस्विनी और साध्वीका रूप बनाये जगत को धोका दे रही है। तूने देखते देखते अभी कैसे दो निन्दित नीच कर्म कियें हैं। पहले तो जल पास रहने हुए तू झूठ बोली कि मेरे पास जल नहीं है, दूसरे मैं तेरा अतिथि था पर तूने मेरे मांगने पर जल देना स्वीकार न किया और फिर मेरे सन्मुख वही जल दूसरे पथिकों को देकर मेर महा अपमान किया।"

बुढ़िया मुसकरा कर बोली, "बेटा, मैं कुछ भी झूठ नहीं बोली और न तुम्हारी मानहानि की। तुम में वस्तुओं के उचित प्रयोग के ज्ञान का अभाव है अतएव तुम ऐसा समझ रहे हो। यदि तुम मेरे थोड़े से प्रश्नों का सच्चा उत्तर देना स्वीकार करो तो मैं अभी तुम्हारी शंका का समाधान कर सकती हूं।"

पथिक को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह बुढ़िया अपने को किस तरह निर्दोष ठहरावेगी अतएव उसने कहा, "अवश्य मैं तेरे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए तैयार हूं।"

बुढ़िया ने पूछा, "अच्छा यह सुन्दर काठ की छड़ी जो तुम्हारे हाथ में है-इसका मूल्य क्या है?"

पथिक—डेढ़ रुपया।

बुढ़िया—जब यह छड़ी तुमको अंधेरी रातमें ऊँची नीची भूमि का पता बतलाती है, जब नदी नाला पार करते समय

तुमको जलकी थाह देती है, जब रात में रास्ता चलते समय भूंकते हुए कुत्ते को भय दिखला कर तुम्हारा पीछा छुड़ाती है, जब कभी घर में अकस्मात काल रूप आए हुए सर्प को मार कर तुमको मृत्यु के भय से बचाती है, जब तुम्हारे रोग से निर्बल शरीर को पग पग पर सहारा देती है और सम्हालती है—उन समयों में इसका मूल्य क्या होना है ?

प०—मेरे विचार में उन समयों पर यह छड़ी अमूल्य वस्तु हो जाती है। मेरी बुद्धि में नहीं आता कि मैं उक्त अवसरों में इसका मूल्य कितना निर्धारित करूं।

वु०—अच्छा बेटा यह बतलाओ तुम प्रातः काल चाय का सेवन करते हो ?

प०—हां, मैं अवश्य करता हूं।

वु०—यदि किसी दिन तुम इस छड़ी को चीड़ फाड़ कर इसकी लकड़ी जला कर अपनी सुबह की चाय बनानी चाहो तो इतनी लकड़ी से तुम्हारी चाय तय्यार हो सकती है वा नहीं ?

प०—मैं आशा करता हूं कि इतना काम इसकी लकड़ी से अवश्य हो जावेगा।

वु०—अब विचार करो उस समय तुम्हारी इस छड़ी का मूल्य क्या होगा ?

प०—मैं समझता हूं छदाम से भी कुछ कम ही होगा।

वु०—मान लो कि किसी समय तुम्हारे पास जलाने की लकड़ी न हो किन्तु यह छड़ी तुम्हारे हाथ में मौजूद हो और तुमसे तुम्हारा कोई मित्र चाय बनाने के लिए ईंधन की लकड़ी मांगे तो तुम उसको क्या उत्तर दोगे ?

प०—मैं इसके सिवाय क्या उत्तर दूंगा कि मेरे पास लकड़ी नहीं है।

बु०—क्या तुम समझते हो तुम्हारा वह उत्तर सच्चा होगा?

प०—बेशक, इसमें क्या सन्देह हो सकता है।

बु०—क्या तुम नहीं कह चुके हो कि मेरी छड़ी की लकड़ी एक आदमी के लिये चाय तैयार करने को कम न होगी, फिर तुम्हारा उत्तर कैसे सच होगा?

प०—भला संसार में ऐसा पागल कौन होगा जो ऐसी अनेक गुणवाली छड़ी की लकड़ी को जलाने की लकड़ी स्वीकार करेगा।

बु०—तो मेरी समझ में तुम्हारे उत्तरों से यह विचार सिद्ध हुआ कि जलाने की और छड़ी की लकड़ी वास्तव में एक है किन्तु छड़ी के रूप में विशेष गुणवती होने के कारण तुम उसी लकड़ी को ईंधन की लकड़ी स्वीकार नहीं कर सकते हो?

प०—अवश्य मेरा यही मतलब है।

बु०—अच्छा तो अब तुम मेरा उत्तर झूठ किस भाँति कह सकते हो? देखो, तुमने मुझसे जल माँगा था, अमृत नहीं माँगा। जिस वस्तु को तुम जल समझ रहे हो वह इस निर्जन तप्त भूमि में जहां कोसों तक कहीं जल वा जलाशय का चिन्ह दिखाई नहीं पड़ता, जल नहीं किन्तु अमृत है। देखो, इस दो शकोरे भर जल ने इस समय अमृत का काम किया वा नहीं। तुम हीं बतलाओ इन प्यासे पथिकों की क्या दशा हो रही थी। यदि क्षण मात्र और इनको जल न मिलता तो इनकी जान जाने में क्या संदेह था। तुमको मालूम नहीं कि

दो घड़े जल मैं कितने कठिन परिश्रम से इस स्थान पर लाकर रखती हूं। तुम दया कर सन्ध्या तक इसी स्थान पर ठहर जाओ, देखो, कितने प्यासे यात्री इस तप्तभूमि के मार्ग से जाते हैं और मैं अपनी कुटी के इस थोड़े से अमृतरूपी जल से किस प्रकार उनकी प्राण रक्षा करती हूं। विचार करके देखो दो चिल्लू जल जिससे तुम अपना नारियल तर कर सकते हो वही जल एक प्यासे मुसाफिर की जान बचा सकता है, और इतने ही जल न मिलने से उसका दम निकल सकता है। फिर तुम इस जल को जल कहोगे वा अमृत? अब समझो यदि मैं ने ऐसे उपयोगी अमृत को नारियल तर करने का जल स्वीकार न किया तो यह झूठ क्यों कर कहा जा सकता है। तुम यह भी समझ रहे हो कि मैंने तुम्हारा निरादर किया। पर वास्तव में मैंने तुम्हारा निरादर वा अपमान नहीं किया वरना तुमको वस्तु के उचित प्रयोग की शिक्षा दी। देखो, तुमने स्वयम् अपनी छड़ी का मूल्य एक अवसर पर डेढ़ रुपया कहा फिर उसी को अमूल्य ठहराया, अन्त में छदाम से भी कम बतलाया। यदि इस एक ही वस्तु के मूल्य के अनेक परिवर्तनों पर ध्यान देते तो तुम को वस्तु के उचित और अनुचित प्रयोग का ज्ञान आप ही हो जाता। ध्यान रक्खो कि किसी वस्तु का यथार्थ मूल्य उतना उस वस्तु में नहीं रहता जितना उसके प्रयोग करने में रहता है। मनुष्य की बुद्धिमत्ता और चतुराई का सच्चा परिचय वस्तुओं के यथोचित प्रयोग से ही ज्ञात होता है। इसे संसार में परमात्मा ने राई से पर्वत तक सब वस्तुओं को जीवों के सुख और उपकार के लिये अमूल्य बनाया है किन्तु उससे यथार्थ लाभ उठाना जीवों की विवेक-शक्ति पर निर्भर है।

अनुचित प्रयोग से हीरा कोयले के मूल्य का हो सकता है और उचित प्रयोग से वही कोयला हीरे के मूल्य का बन सकता है। किसी वस्तु का यथार्थ मूल्य किस प्रकार के प्रयोग से प्रकट होता है इसका नियम बनाना बड़ा कठिन है किन्तु यदि विवेक शक्ति से काम लिया जावे तो समय, अवस्था, आवश्यकता और दूरदर्शिता स्वयम् इसका ज्ञान करा देती हैं।

पथिक बुढिया का यह दार्शनिक विवाद और अमूल्य शिक्षाप्रद उपदेश सुन कर चकित हो गया और बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ कर बोला, "तपस्विनी माता! मैं ने अनजान में बड़ा नीच कर्म किया और आप ऐसी ज्ञानवती और महात्मा साध्वी को कठिन दुर्वचन कहे। मेरा पाप कैसे निवारण होगा? आप धन्य हैं! आपके दर्शनों से मैं बड़ा कृतार्थ हुआ दया कर मेरा अपराध क्षमा कीजिए।"

बुढ़िया ने कहा, 'बेटा इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं, यदि कुछ है तो मेरी उस बहिन का है जो तुम्हारी माता है। यदि उसने तुमको वस्तुओं के उचित प्रयोग का ज्ञान बतलाया होता तो आज तुमको मेरे व्यवहार पर कुछ भी आशका न होती और तुम मुझ पर ऐसा असभ्य कलंक न लगाते। अज्ञानता से मनुष्य उत्तम शिक्षा को ग्रहण न करके शिक्षक में ही दोष दृष्टि करने लगता है। इस समय मुझको एक पुरानी बात स्मरण हो आयी है। मैं तुमको सुनाती हूं, सुनो, इससे भी तुमको कुछ लाभ ही हो रहेगा—

मेरी जन्म भूमि वाले ग्राम में एक निर्धन गंवार किसान रहता था। मूर्खता के कारण उसमें अभिमान भी कम न था उसको दैवयोग से किसी तरह एक दुशाला मिल गया।

तुम जानते हो मूर्ख और अहंकारी मनुष्यों में प्रायः ऐसी प्रकृति होती है कि जब उनको कोई वस्तु उनकी हैसियत तथा अवस्था से विशेष प्राप्त हो जाती है तो वह उनको अपच सी हो जाती है और वे उस वस्तु को अवसर कुअवसर जगत को दिखलाने के लिए बेचैन से रहते हैं और उसे इस तरह बे-परवाही से काम में लाते हैं, जिसमें देखने वाले विश्वास किया करें कि वह उस वस्तु को कोई असाधारण वस्तु नहीं समझता है। किन्तु जब उसको कोई ऐसे अवसर में टोक देता है तो उसको क्रोध आ जाता है, और वह टोकने वाले से बुरा बर्ताव करने लगता है। निदान उस किसान को भी ऐसा ही रोग था—वह उस दुशाले को समय कुसमय दिन रात किसी न किसी अंग में लपेटे फिरता था कभी सिर में बांध लेता, कभी पृथ्वी पर बिछा देता, कभी परदे का काम लेता और कभी तोड मरोड़ कर उसी पर बैठ जाता, कभी गले में लपेटता और कभी कमर से बांध लेता था। एक दिन वह किसान खलिहान में भूसा लाने के लिए गया। दुशाला ओढ़े हुए खांचा व बोरा साथ ले जाने में उसे लज्जा सी आयी, अतएव वह ऐसी कोई वस्तु साथ नहीं ले गया। अब खलिहान से भूसा लावे तो कैसे लावे। अन्त में उस गंवार ने मन में सोचा कि साधारण किसान खाँचों और बोरों में भूसा ढोया करते हैं। यदि मैं इस दुशाले में बाँध कर भूसा ले जाऊंगा तो लोग मुझको अवश्य एक बड़ा और हैसियत वाला किसान समझेंगे। यह सोच कर झट उसने अपना भूसा दुशाले में बाँध कर ढोना आरम्भ कर दिया। पर साधारण किसानों से इतनी विलक्षणता उसने यह भी रक्खी कि सिर की जगह भूसे की गठरी कन्धे पर

लाद लो। उसी गाँव में एक बुद्धिमान बूढ़े पण्डित भी रहते थे। वह उनको रास्ते में मिल गये। उनको उसके इस अनुचित प्रयोग से बड़ा दुःख हुआ। वह किसान से कहने लगे, "तुमको इतना भी ज्ञान नहीं है कि किस वस्तु का प्रयोग किस काम में किया जाता है। तुम दो आने के बोरे का काम दो सौ के दुशाले से ले रहे हो?"

यह बात सुन किसान को क्रोध आ गया। उसने समझा मेरी उन्नति इससे देखी नहीं जाती, अतएव पण्डित से व्यंग भाव से बोला, "पण्डित जी। जान पड़ता है आपके शास्त्र के मत से मैं ने कोई बड़ा पाप किया है। अब दया कर इसका प्रायश्चित्त भी बतलाते जाइये। मैं प्रायश्चित्त की दक्षिणा भी आप ही को दे दूँगा।

पण्डित ने कहा, "यजमान! तुम्हें प्रायश्चित्त बतलाने की आवश्यकता नही है। जाड़ा आने दो जब दुशाले की जगह बोरा ओढ़ोगे तो इसका प्रायश्चित्त आपसे आप पूरा हो जावेगा। और जब मैं अपने यजमान को उस विलक्षण अलङ्कार से युक्त पाकर हर्षित हूंगा तो मेरी दक्षिणा भी उसी समय वसूल हो जावेगी।"

यह बातें सुन कर पथिक विह्वल हो कहने लगा, "माता! आप साक्षात् देवी की अवतार जान पड़ती हैं, आपकी इन ज्ञान भरी बातों से मुझको अपूर्व शिक्षा प्राप्त हुई पर अभी कुछ और भी इस विषय पर आपके मुखारविन्द से सुनने की लालसा है। जैसी आज्ञा हो।"

तपस्विनी बोली, "बेटा! इसी पर तो बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर तुम्हें भी रास्ता तै करना है और मुझ

को भी कुछ रोटी पानी का प्रबन्ध करना है। अतएव विशेष वार्ता को अवसर नहीं, किन्तु एक छोटी सी आख्यायिका तुम्हें और सुनाती हूं —

मेरे गाँव में एक सुनार रहता था। वह बड़ा धनवान था किन्तु अभाग्यवश उसकी पत्नी बड़ी ही फूहड़ और मतिमन्द थी। उसको वस्तुओं के उचित प्रयोग का ज्ञान न था, अतएव वह पति का धन सदा अनावश्यक और अयोग्य व्यवहार में नष्ट किया करती थी। उसका घर गाँव के समीप एक बहती हुई नदी के तट पर बना हुआ था। उस नदी में प्रायः गाँव के छोटे छोटे लडके मिट्टी के टूटे फूटे पात्रों की गोली गोली गिट्टियाँ बना कर छिछली खेला करते थे। एक दिन उस सुनार का छोटा लड़का रोता हुआ माता के पास गया और कहने लगा, "अम्मा! मुझे भी गिट्टियाँ बना दो मैं भी लड़कों के साथ छिछली खेलूंगा।

सुनारिन बोली, "बेटा! तू मिट्टी की गिट्टियों के लिए क्यों रोता है? तू जितने चाहे रुपये लेजा, और रुपयों से छिछली खेला कर। यह सब धन तेरे ही हर्ष और आनन्द क लिए गँठा पड़ा है। मिट्टी की गिट्टियों से छिछली क्यों खेलेगा?'

निदान उस मूर्खा माता के पुत्र ने नित्य रुपयों से छिछली खेलना आरम्भ किया। सुनार क पड़ोस में दिव्या नाम की एक परम दयाशीला और बुद्धिमती स्त्री रहती थी। उसने यह तमाशा देख कर सुनारिन के घर जा कहा, 'तेरी बुद्धि ऐसी भ्रष्ट हो गयी है और तू धन के गर्व से उन्मत्त हो कर इस धन को ऐसा अक्षय समझ रही है कि मिट्टी की

गिट्टियों की जगह उस अज्ञान बालक को रुपयों से छिछली खिला रही है ?"

सुनारिन तनक कर बोली, "जिससे मेरा धन और विभव नहीं देखा जाता वह अपनी आँखों में पट्टी बाँध ले। मेरा बच्चा क्या किसी दरिद्र का बच्चा है जो मट्टी की गिट्टियों से छिछली खेलेगा ?"

बेचारी दिव्या यह गर्व-युत व्यंग वाणी सुन अपना सा मुँह लिए घर लौट आयी। इस घटना को हुए पाँच वर्ष बीत गये। इस बीच में दिव्या फिर उस सुनार के घर कभी नहीं गयी। एक दिन दिव्या की एक पड़ोसिन बीमार थी जिसका घर सुनार के घर से कुछ दूर आगे था। दिव्या उस पड़ोसिन को देखने और कुछ सहायता करने के लिए सुनार के घर की राह से जा रही थी। जब सुनार के दरवाज़े के समीप पहुँची तो क्या देखती है कि सुनार का वही लड़का एक मट्टी के फूटे पात्र में जल पी रहा है और सुनारिन एक फटा हुआ मैला वस्त्र पहने चुडैल का सा रूप बनाए उसी के पास उदास खडी है। दिव्या आश्चर्य में भर कर चकित हो गयी और एकाएक उसके मुँह से यह प्रश्न निकल पड़ा, "लल्लू ! तू फूटे मट्टी के बर्तन में पानी क्यों पी रहा है ?" लड़के ने बहुत उदास होकर कहा, "चाची, क्या करूँ एक ही जलपात्र तो घर में बच गया था सो बाबा आज उसे भी बेचकर कुछ भोजन की सामग्री मोल लाये तो मुँह में अन्न पड़ा। अब जल पीने का कोई पात्र घर में नहीं बचा।" लड़के का ऐसा करुणा जनक उत्तर सुन दयाशीला महिला का कलेजा टुकडे टुकड़े हो गया। उसकी आँखों में जल भर आया और सुनारिन से सन्मुख होकर बोली, "क्यों, भाग्य-

वती, तुमने इस अज्ञान बालक को मिट्टी की गिट्टियों की जगह रुपयों से ऐसी छिछली खिलायी कि आज फूटे मिट्टी के पात्र में जल पिला ही के दम लिया।" अब सुनारिन का नशा उतर गया था और गर्व शान्त हो चुका था। सच है, जब लक्ष्मी की उदारता से मूर्ख उन्मत्त हो जाता है तो दरिद्रता की ही उदारता से शान्ति पाता है। निदान सुनारिन दिव्या की बातें सुन उनके चरणों पर गिर पड़ी और रोते हुए स्वर में बोली, "देवी! जो बड़ों की शिक्षा का अनादर करता है उसकी यही दशा होती है।" इतने में सुनार भी घर से बाहर निकल आया और दयाशीला दिव्या की करुणामय मूर्ति देख फूट फूट कर रोने लगा। यह शोकजनक दृश्य उस उदारशीला रमणी से देखा नहीं गया। वह सुनार का कोई दोष नहीं समझती थी। वह सदा से उसको भलामानुस और ईमान्दार जानती थी। उसने कहा, "देखो, अब तुम लोगों का यह दुःख मुझसे देखा नहीं जा सकता। मैं नहीं चाहती कि मेरे पड़ोसी भूखों मरें और मैं शूकरी के समान अपना पेट भर कर आनन्द मनाऊँ। मैं तुमको आज एक हजार रुपये देती हूं, तुम इन रुपयों से फिर अपनी दुकान खोलो और कारोबार जारी करो। इसी की आमदनी और लाभ से अपनी पूँजी बनालो और फिर पाँच बरस में थोड़ा थोड़ा करके मूल का मूल मेरा रुपया चुका दो। पर पहले यह प्रतिज्ञा करलो कि तुम अपनी स्त्री का हाथ इस व्यवहार में नहीं रहने दोगे। मैं आज से तुम्हारी दुर्बुद्धिनी स्त्री को स्वयम् वस्तुओं के उचित प्रयोग की शिक्षा दूंगी। और जब यह मेरी परीक्षा में उत्तीर्ण हो जावेगी तो मैं आप इसको तुम्हारे काम में हाथ बटाने की सम्मति दे दूँगी।"

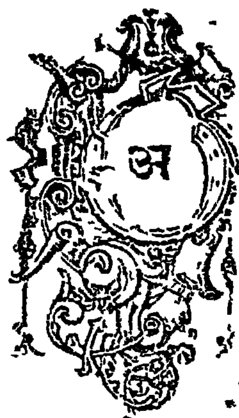
निदान ऐसा ही हुआ। दिव्या के धन के उचित प्रयोग से उसके पड़ोसी के दुर्दिन हट गये। यद्यपि वह पिछली सम्पत्ति तो फिर नसीब न हुई किन्तु भोजन, वस्त्र और गृहस्थी के आवश्यक कामों के लिये कोई कमी भी न रही।

तपस्विनी के मुँह से यह हृदयग्राही आख्यायिका सुन पथिक फिर आनन्द में मग्न हो गया और बड़े प्रेम से उसको प्रणाम कर मन ही मन प्रशंसा करता हुआ उसके आश्रम से बिदा होकर चला गया।

पाठिकाओ गृहस्थी के व्यवहार में सब से मुख्य शिक्षा इसी की होना चाहिए। बिना इसके पूर्ण ज्ञान के स्त्रियाँ सोने का घर मिट्टी कर डालती हैं।



काल का कौतुक



अब से हज़ार वर्ष पहले कान्यकुब्ज जिसको अब कन्नौज कहते हैं बड़ा ही सुन्दर, रमणीय और विभवशाली नगर था। इतिहास से विदित है कि उस समय इस नगर में केवल एक जाति तम्बोलियों की दुकानें तीस सहस्र के लगभग थीं। अब इसी से पाठक इस नगर के विस्तार और जन-संख्या का अनुमान कर सकते हैं। उस समय वहाँ दीपचन्द नामक एक प्रसिद्ध सम्पत्तिशाली महाजन रहता था। उसका स्वभाव बड़ा कठोर था। उसमें कूट कूट कर दुष्टता भरी थी। वह बड़ा ही क्रूर, निर्दयी, अभिमानी और अशिष्टाचारी था। पर अमूल्य रत्न-रूप उसके पास एक सेवक था। वह उतना ही उदार, दयावान स्वामिभक्त और सदाचारी था। वह कभी अपने स्वामी की आज्ञा उल्लंघन नहीं करता था। इसी कारण वह दीपचन्द का बड़ा विश्वासपात्र था और दीपचन्द उसी को विशेषतः अपने निज के कामों में लगाये रखता था। यद्यपि दीपचन्द उसके सम्बन्ध में तो क्रूरता और अशिष्टता का व्यवहार नहीं करता था तथापि सेवक अपने स्वामी के निर्दय और क्रूर व्यवहार से बड़ा दुःखी और उदास रहता था। एक दिन जब कि प्रचण्ड शीतकाल की हिममयी रजनी एक पहर से कुछ अधिक बीत चुकी थी, दीपचन्द अपने महल के एक कमरे में बैठा हुआ भोजन कर रहा था। सेवक अपने भोजन का भाग पा चुका था और उसे अपने सोने के कमरे में रख कर स्वामी के भोजन कर चुकने की प्रतीक्षा से

सेवा में उपस्थित था। इतने में कमरे के बाहर सामने कुछ दूर से कँपती हुई, संकोच भरी, रुक रुक कर उच्चारण होती आर्त वाणी सुन पड़ी —

"महाशय! मैं समय के फेर से विवश होकर एक महा अधम और घृणित कामना से आपको कष्ट देने आया हूं, यदि आज्ञा होगी कहूंगा।"

दीपचन्द अभ्यागत की ओर ताक कर सेवक से कुपित होकर बोला, "देखो यह कौन कुत्ते की तरह मेरे सामने भूंकने आया है?" सेवक ने कमरे से बाहर निकल कर देखा कि एक कृशित किशोर मानव मूर्ति नंगे सिर नंगे पैर लज्जा से सिर झुकाये विकट शीत-प्रेरक वायु के विषम झोंकों से थर थर काँपती दाँत कटकटाती सामने खड़ी है। सेवक ने पूछा, "तुम कौन हो और क्या चाहते हो ?"

"क्या कहूँ, एक भाग्यहीन मनुष्य हूँ। बाहर शीत से शरीर भीग रहा है, भीतर क्षुधा की ज्वाला से उदर जल रहा है। मैं और कुछ नहीं चाहता, केवल थोड़ा सा अन्न।" यही उत्तर मिला।

यह करुणा-जनक हृदय-विदारक शब्द सुन सेवक का कलेजा हिल गया। आँखों में आँसू छा गये। पर आँखें मींच कर उलटे पांव स्वामी के निकट लौट गया, और हाथ जोड़ कर बड़े कातर से स्वर से बोला, "स्वामी! एक सच्चा दुखी और भूखा अभ्यागत कुछ अन्न की याचना करता है जो आज्ञा हो।" यह सुनते ही अभिमानी दीपचन्द साक्षात् यम-मूर्ति बन गया। उसका मुख रक्त वर्ण होगया उसकी आखें लाल हो गई और भवें तन गयीं। फिर वह गर्ज कर बोला "अभी इस पाजी

कमीने की गरदन में हाथ डाल कर फाटक के बाहर निकाल कर तब लौटो। इस दरिद्र की इतनी बड़ी हिम्मत! यह फाटक लाँघता हुआ निःशंक मेरे सामने आकर टें टें मचाने लगा।" बेचारा सेवक क्या करता। सेवक धर्म बड़ा कठिन है। गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं—

'हरिगिरि तें गरु सेवक धर्मा। अरित काह न करहिं कुकर्मा॥'

लाचार सन्तप्त हृदय इस दुष्कर्म के लिए आगे बढ़ा और नर्म हाथ से उसका गला थाम कर आहिस्ते २ बाहर ले गया। वहाँ उसके पैर पर पड़ा और विनय पूर्वक कहने लगा, "क्षमा करो, मैं सेवक हूं, स्वामी की आज्ञा का पालन करना मेरा मुख्य कर्तव्य है पर कृपया यहाँ से चले न जाना। मैं क्षण भर पीछे तुम से आकर मिलता हूँ।" यह कर सेवक शीघ्र चला गया और तुरन्त अपने कमरे से अपने हिस्से का आहार लिए अभ्यागत के सन्मुख आ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ कर बोला, "दया कर यह अन्न भोजन कर लो। यह स्वामी का नहीं, मेरे भोजन का भाग है। मैं समझता हूं तुम कोई उच्चात्मा पुरुष हो। समय के प्रकोप से इस आत्म-पीड़क याचना के लिए विवश हो। पर इसका सोच मत करो। भावी अटल है जब महाराज पाण्डु के दिग्विजयी वीरेन्द्र वीर राजकुमार भी इस विधि विषाद-भाविनी कर्म-रेखा का उल्लंघन न कर सके और इस अधम कर्म में प्रवृत्त हो हो गये तब हम लोगों की गिनती ही क्या है। कौन जाने किसके भाग्य में कब क्या बदा है। मैं तुम्हारी चेष्टा देख रहा हूं। तुम मेरे इस तुच्छ उपहार को अस्वीकार करना चाहते हो। पर यदि ऐसा तिरस्कार करोगे तो मेरी आत्मा को बड़ी कठोर ठोकर लगेगी और तुम भगवान के सामने इसके दोष-भागी बनोगे।' यद्यपि दीपचन्द

की अशिष्टवाणी सुन कर अभ्यागतकी क्षुधा ज्वाला तो समूल नष्ट हो चुकी थी और उसके अकलुषित मन आकाश में एक दूसरी ही सन्ताप तड़ित तड़प रही थी किन्तु सेवक का अनादर करना भी उसके लिये दारुण कष्ट जनक हो गया और वह उस आहार को लेकर चल दिया। यद्यपि सेवक उस रात में अपने हिस्से के भोजन से अभ्यागत की क्षुधा दूर कर निराहार ही सो गया, तथापि उस उदारता से उस रात में जैसा सन्तोष जैसा आनन्द और जैसी शान्ति भाव उसकी पवित्र आत्मा को प्राप्त हुए वैसी उसके जीवन में कभी पहले प्राप्त न हुए थे। यह दीपचन्द की दारुण करुणा प्रसवी और सेवक की विशद सुयशमयी घटना सवत् १०६३ के पूस महीने में हुई।

दीपचन्द के इस अमानुषी व्यवहार से सेवक को उसकी ओरसे बडी ही घृणा उत्पन्न हो गई। उसने सोचा इस अत्याचारी के अधीन रह कर न जाने मुझ को ऐसे ही कितने दुष्कर्मों में भाग लेना पड़ेगा। अतएव दो ही चार दिन पीछे उसने उदास होकर दीपचन्द की नौकरी छोड़ दी और अपने घर चला गया।

दीपचन्द की दुष्ट प्रकृति दिन दिन बढ़ती ही गयी। उस की क्रूरता, अशिष्टता और अभिमान के कारण सारे नगर के लोग उससे द्वेष भाव रखने और उसके अनिष्ट विचार में प्रवृत्त रहने लगे। जिन लोगो का उससे वाणिज्य व्यवहार था वे लोग प्रत्यक्ष तो नहीं किन्तु गुप्त रीति से उसके शत्रु ही बन गये थे और सदा उसको हानि पहुँचाने और नीचा दिखलाने के प्रयत्न में दत्त-चित्त रहने लगे। इन दुर्व्यवहारों से दीपचन्द के कारोबार में दिन दिन अवनति होने लगी और हानि

पर हानि होती गयी, यहां तक कि उसकी स्थिति कुछ ही साल पीछे अत्यन्त शोचनीय हो गई। पाठिकाओ! परमात्मा इस विश्व ब्रह्माण्ड का स्वतन्त्र अधिपति है। दया, क्षमा, विनय, सत्य, शील, सन्तोष इत्यादि उसके सुशासन के पवित्र नियम तथा कानून हैं और काल-चक्र उसका विचित्र दिव्य अस्त्र है। जब कभी निर्दयी अभिमानी जीव थोड़ी श्री प्राप्त कर उन्मत्त और निरंकुश बन अपनी दुष्कामनाओं का कोट बना कर एक विलक्षण मनोराज्य स्थापित कर लेता है और उसकी दुर्बल और शक्तिहीन प्रजाओं पर अत्याचार और अन्याय कर उसके दयामय राज्य के पवित्र नियमों का तिरस्कार करने लगता है तो वह मानो उस विश्वेश से विरुद्ध की घोषणा प्रकाशित कर देता है, उस समय विश्वनाथ अपने उसी दिव्य अस्त्र के पुर्जों को धीरे से हिला देता है। बस वह अचूक काल-चक्ररूपी अस्त्र क्षण मात्र में उस विरोधी के कोट पर वज्र के समान आ गिरता है और उसको सदुर्ग पतन कर रसातल के पेंदे में पहुँचा देता है। उस समय त्रिलोकी की शक्ति भी उसकी रक्षा नहीं कर सकती। मैं तुमको इसका प्रत्यक्ष प्रमाण दिखलाऊँगा।

वैशाख कृष्ण अमावस्या का प्रातःकाल है। बाल सूर्य्य की किरणें कान्यकुब्ज नगर को धीरे धीरे आच्छादित कर रही हैं। इस होनहार बाल सूर्य का क्षण क्षण बढ़ता हुआ प्रचंड प्रताप देख कर अभीसे कोमल और सुकमार स्त्री पुरुष कातर होकर कुम्हला रहे हैं। और शीतल जल और खस की टट्टियों के सुयोग्य प्रबन्ध के विषय में पहले ही से सेवकों को सजग कर रहे हैं। दीपचन्द की कोठी में भी नौकर चाकर इन्हीं प्रबन्धों की चिन्ता कर रहे हैं। दीपचन्द आज

कुछ नियत समय से पहले ही अपनी गद्दी पर आ बैठे हैं। पर जिस प्रकार इस ग्रीष्म काल में वह गद्दी पर आते ही सेवकों और कर्मचारियों को पंखा, खस, जल आदि की तैयारी के विषय में डाट डपट किया करते थे, आज इस व्यवहार से कुछ उदासीन हैं। हाथ में एक पत्र लिए बड़ी चिन्ता से पढ़ रहे हैं और कोठी का मुनीम गद्दी से हट कर एक ओर बही-खाता खोले उलट पलट रहा है। दीपचन्द ज्यों ज्यों उस पत्र को पढ़ते जाते हैं न जाने क्यों उतनी ही गम्भीर चिन्ता के चिह्न उनके मुख मण्डल पर अधिक बढ़ते जाते हैं। अभी पत्र समाप्त नहीं हुआ, दीपचन्द ने बीच ही में पत्र से दृष्टि हटा कर मुनीम से घबरा कर कहा, "क्यों जी श्यामदास की कोठी से रुपयों के विषय में कल क्या उत्तर मिला ?"

मुनीम ने कहा, "सरकार! आप श्यामदास के विश्वास में व्यर्थ पड़े हुए है। श्यामदास आप के वास्ते भीतर से और हैं बाहर से और। वह आजकल हमारी कोठी का समय कुछ बेंड़ा समझ कर कुछ ऐंठ से गये हैं। कल साफ जवाब दे दिया कि इस महीने में कोठी से रुपये नहीं मिल सकते। मुनीम की बात सुन कर दीपचन्द बहुत ही हताश हो घबरा कर बोला, "अरे क्या कहा! रुपये इस महीने भर नही मिलेंगे! तुमने यह काशी की कोठी की पत्री देखी ?" अभी मुनीम कुछ उत्तर न देने पाया था कि एक द्वारपाल ने आकर दीपचन्द को सिर झुकाया। दीपचन्द ने पूछा, 'क्या बात है ?"

दरवान ने कहा, "किसी कोठी का गुमाश्ता द्वार पर खड़ा है और सरकार की सेवा में आना चाहता है।" यह

सुन कर दीपचन्द का मुँह सूख गया और चिन्तित होकर पूछा, "किस कोठी का? क्या तुमने उसको नहीं पहचाना?"

दरवान ने कहा, "वह शहर का आदमी नही है, कहीं बाहर से आया है। उसने कोठी का नाम पूछने पर नहीं बतलाया और कहा—यही कहो, किसी कोठी का गुमाश्ता आया है।"

दीपचन्द कुछ व्याकुल सा होकर बोला, "अच्छा, तो... फिर" बुला" ओ।"

दरवान चला गया। क्षण भर पीछे एक मनुष्य ने सामने आकर प्रणाम किया और एक पत्र सामने रख कर वह बोला "यह साढ़े तीन लाख की दर्शनी हुण्डी है। इसका रुपया अभी चुकता हो जाय, मुझे आज ही लौटना है। मैं समझता हूँ इसके समाचार की पत्री आपके पास पहुँच गई होगी। हाँ! ठीक वही पत्री तो है जो आपके हाथ में है। मैं पहचानता हूँ यह मेरे ही सामने लिखी गयी थी।"

इधर हुण्डी देखते ही दीपचन्द का मुँह पीला पड़ गया। हाथ पाँव सनसनाने लगे। अङ्ग अङ्ग शिथिल हो गये। जिस बल पर बैठे थे चित्र के समान उसी बल पर बैठे रह गये और हक्का बक्का हो हुण्डीवाले का मुँह ताकने लगे। रुपया तो कोठी में था नहीं। श्यामदास की कोठी से सूखा जवाब ही मिल चुका था। अब बेचारे दीपचन्द रुपया दें तो कहाँ से दें। निदान इस अनिवारणीय विकट आपत्ति के विषम सन्ताप से दीपचन्द मूर्छा खाकर कटे वृक्ष के समान गद्दी पर लम्बे हो गये। जब थोड़ी देर में मूर्छा छूटी तब महा कातर स्वर से बोले, "भैया, इस समय तो रुपये कोठी में नहीं हैं। इस

हुण्डी की समाचार पत्री मुझको कल ही मिली थी। मैंने श्यामदास की कोठी से रुपये का प्रबन्ध करना चाहा पर उन्होंने पाँच पुश्त का बर्ताव भुला कर धोखा दे दिया।"

फिर क्या था, एक घंटे में दीपचन्द के दिवाला निकलने का अशुभ समाचार कन्नौज नगर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गूँज उठा। हाहाकार मच गया। दीपचन्द की दिव्य कोठी श्मशान की भाँति दीखने लगी। श्री हन दीपचन्द अपने आसन पर बैठा हुआ गहरे साँस ले रहा था। इतने में सैकड़ों बनिये महाजनों और साधारण मनुष्यों ने दीपचन्द की कोठी घेर ली और वे अपना अपना रुपया माँगने लगे। अब दीपचन्द किस किस को दे और कहाँ से दे। अन्त में सब लोगों ने न्यायालय की शरण ली और वहाँ से अपना देना पावना ठीक करा कर दीपचन्द की एक एक वस्तु अर्थात् जगह ज़मीन, घर-द्वार, हाथी-घोड़ा वस्त्र-आभूषण और बरतन-भाँडे सब बिकवा बिकवा कर थोड़ा बहुत जितना जिसके हिस्से में आया ले लिया।

यह भयानक अशुभ दुर्घटना संवत् १०६६ के वैशाख मास में हुई।

दीपचन्द इस अचानक दुर्दैव के चक्र में आकर और एक ही दिन में आकाश से पाताल में पतन होकर अनाथ हो गया अब भोजन तक का ठिकना नहीं रहा। हित, मित्र, मेली, सम्बन्धी सब ने अपना मुँह छिपा लिया। कोई बात तक पूँछने वाला न रहा। जिस नगर में उसने ऐसे विभव विलास के साथ जीवन निर्वाह किया था अब उसी नगर में इस तरह अपमानित हो होकर खाना बड़ा ही शोकप्रद हो गया।

अन्त में वह दुखी होकर एक दिन नगर छोड़ कहीं चला गया और उसके पीछे फिर नगर-निवासियों को उसका कुछ पता न चला।

* * * *

उक्त घटना से छः वर्ष पीछे दुष्टात्मा पापी महमूद गज़नवी ने अनायास मथुरा के पुनीत नगर पर डाकुओं के समान आक्रमण कर नगर को लूटना आरम्भ कर दिया। उन दिनों सेठ हरनाम दास का मथुरा में बड़ा ज़माना था। कई अरब का उनका कारोबार फैला हुआ था। मील भर से अधिक भूमि पर उनकी कोठी, महल, कोषागार और तहखाने बने हुए थे। कोषागार के मकान और तहखाने ऐसे सुदृढ़ और पेच पाँच से भूल भुलैया के समान बने हुए थे कि अनजान आदमी महीनों खोजा करे तब भी उसके एक कोने तक का पता न मिल सके। कोषागार में किवाड़े ऐसी वैज्ञानिक रीति के लगे थे कि मकान के भीतर प्रवेश करते ही किवाड आप से आप भिड़ जाते थे। यदि प्रवेश-कर्ता उस किवाड़ के कल पुरजों को न जानता हो तो उसी में बन्द ही रह जावे और जब तक यन्त्र-परिचित मनुष्य बाहर से खोल कर न निकालता उस का निकलना असम्भव हो जाता था।

महमूद की चढ़ाई सुन कर हरनाम दास ने अपने वंशों को कोठी से अलग कर एक सुरक्षित स्थान में पहुँचा दिया था। अकेले आप कोठी में ठहर गये थे। जब नगर लूटते लूटते कुछ सैनिक सेठ की कोठी पर पहुँचे तो उस भूल-भुलैया के प्रवेश करते उनकी बुद्धि चकरा गई और सेठ की सम्पति हाथ लगनी असम्भव जान पड़ी, तब मुखिया सैनिक ने

हरनाम दास को पकड़ लिया और कहने लगा कि अभी खजाने की कुंजी लाओ और मालखाने का पता बतलाओ नहीं तो इसी दम जहन्नुम का रास्ता दिखलाता हूं।

सेठ हरनाम दास ने कहा, "आप क्रोध न करें। मैं अपनी स्त्री के पास से अभी कुंजी लाये देता हूं और कोषागार का एक एक मकान आपके सामने खोले देता हूँ किन्तु इसके पहले आपसे एक वचन माँगता हूं। आप जानते हैं कि मेरे पास अरबों की सम्पत्ति मौजूद है। यह आपकी नज़र है, इसको बे-खटके ले लीजिये, पर मेरी और मेरे परिवार की जान बचा दीजिये। मैं आपकी शरण हूँ"।

मुखिया सैनिक ने क्षण भर सोच कर कहा, "अच्छा मैं वचन देता हूं, ऐसा ही होगा।"

यह सुन कर सेठ ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और सैनिक को सर झुकाता हुआ महल में चला गया और झट खिड़की की राह से निकल कर चम्पत हो गया। इधर वह मुखिया सैनिक टहल टहल कर अपने एक साथी सैनिक से मुस्का मुस्का कर बातें करने लगा—

"क्यों मियाँ मसऊद! ये अहमक[१] हिन्दू वचने को क्या बला समझते है? क्या ये बेवकूफ़ इस वचन को कोई लोहे की दीवार जानते हैं? भला हम लोग इस तरह कौल करार माना करें तब तो गारतगरी[२] और मुल्कगीरी[३] खूब करें। तुम क्या ख़याल करते हो कि मैं माल लेकर इस काफ़िर[४] को छोड़ दूँगा? अजी मैं तो इस मूज़ी[५] की कुल दौलत भी लूँगा

१—बुद्धिहीन। २—लूट। ३—मुल्क जीतना विधर्मी। ५—कष्ट-दाता।

और अल्लाह के नाम पर इसको क़त्ल भी करूँगा। तुम खूब समझ लो जब तक यह मूज़ी ज़िबह न होगा इसकी औरतें आसानी से हाथ न आयेंगी।"

साथी—भाई इन्साफ़ की बात तो यह है कि ये हिन्दू सच्चाई ही को अपनी ज़िन्दगी, अपनी दौलत और अपनी सलतनत[1] समझते हैं। ये सच्चाई के आगे अपनी जान को ख़स[2] के बराबर नहीं मानते। ये लोग रास्ती[3] पर जान कुर्बान[4] करना फ़ख़्र[5] समझते हैं और नारास्ती से बादशाहत[6] हासिल करने पर लानत[7] भेजते हैं। ये लोग हम लोगों के मुल्कगीरी के असूलों[8] को तो जानते नहीं, जिस तरह ख़ुद सच्चाई को दीनो ईमान मानते हैं उसी तरह हम लोगों को भी रास्ती का पाबन्द समझ कर आसानी से हमारे दाम[9] में आ जाते हैं। सच पूछो तो अब बार बार धोका खाकर ये लोग भी कुछ चौकन्ने होते जाते हैं, गो आपस में तो नहीं पर हम लोगों के मुकाबिले में कभी कभी चाल चल जाते हैं। चाहे आपकी जो राय हो पर मेरे ख़याल में तो इन लोगों को नारास्ती और वादा-खिलाफ़ी[10] के जानिब[11] रुजू[12] करने का इल्ज़ाम हमीं लोगों पर है। और मेरी समझ में तो इनकी औरतों पर दस्तदराज़ी[13] करना हम लोगों की सख़्त वहशियाना[14] हरकत[15] है। इनकी औरतों की नज़ीर इस आलम[16] में मिलनी ग़ैर मुम्किन है। इस दुनिया की दूसरी औरतों का

१—राज्य। २—घास। ३—सत्य। ४—बलिदान। ५—अभिमान ६—झुठाई। ७—धिक्कार। ८—नियम। ९—फन्दा। १०—प्रतिज्ञा भंग ११—ओर। १२—प्रेरित आकर्षित। १३—हस्ताक्षेप। १४—पशुवत्। १५—आचरण। १५—संसार।

ख़याल इनके पुरअज़मत[1] ख़यालो तक पहुँचना तो क़यामत[2] तक भी मुहाल[3] है। ये अपनी इफ़्फ़त[4] और पारसाई[5] के हिफ़ाज़त में जान देना तो एक दिलचस्प खेल समझती हैं। जब जब हम लोगों ने इनके मर्दों को धोके से फतह कर लिया है तो इन औरतों ने हम लोगों की नाजायज़[7] हरकतों से बचने के लिए घरों में आग जलाकर अपने को ज़िन्दा जला दिया है। इनको अपने शौहरों[8] के साथ ऐसा सच्चा और पक्का इश्क़[9] होता है कि शौहरों के मरने पर ये किसी तरह जुदाई का सदमा बरदाश्त नहीं कर सकतीं और बेशतर[10] उन मुर्दा शौहरों की चिता पर शौक के साथ ज़िन्दा जल जाती हैं। आप ख़याल तो कीजिये, क्या इन्सानी[11] दुनिया में इसकी नज़ीर मिल सकती है। यह वह अजीब बात हैं कि इन्सान तो इन्सान इनके इस पाक जाँनिसारी[12] पर फ़रिश्ते[13] भी चकरा जाते हैं। हिन्दू ख़ुद[14] कुशी को गुनाहअज़ीम[15] समझते हैं लेकिन उनकी औरतें इस खसूस[16] में खुदकुशी को फ़ख्र समझती हैं।

क्या तुमने उस ईरानी शायर[17] का शेर नहीं सुना है। वाह वाह, क्या ही सच्चा शेर[18] है—

दर मुहब्बत अज़ ज़ने हिन्दू कसे मरदान नेस्त।
सोख़तन् बर शमः मुर्दं कार हर पर्वानःनेस्त॥

१—महत्त्वपूर्ण। २—प्रलयकाल। ३—कठिन। ४—सतीत्व। ५—पवित्रता। ६—हृदयग्राही। ७—अनुचित। ८—पति। ९—प्रेम। १०—अधिकतर। ११—मानव जगत। १२—आत्म-समर्पण। १३—देवतागण। १४—आत्म-हत्या। १५—महापाप। १६—मुख्य विषय। १७—कवि। १८—कविता के दो पद।

आर्य जाति की रमणियों से प्रेम में बढ़ कर दूसरा वीर पुरुषार्थी नहीं है। मृतक रूपी दीपक पर जलना सब पतंगों का काम नहीं है।

अर्थात्—आर्य महिलाओं के अतिरिक्त मृतक पति के चितारूपी-दीपक पर जल जाना दूसरे देश की साधारण पतंग-रूपिणी स्त्रियों का काम नहीं है।

पर इससे यह न समझना चाहिए कि इस मुल्क की जो औरतें इस तरह मरे शौहरों के साथ नहीं जलतीं वे उन जलने वाली औरतों से कुछ रुतबा या इज्जत में कम होती हैं, हरगिज़ नहीं। वे अपने शौहरों की याद में जिस पारसाई और पाकीज़गी से बसर करती हैं वह फरिश्तों के लिये रश्क देने वाली है मेरे खयाल में तो जुदाई की बेकरारी में फौरन जान देकर मुसीबत से छूट जाना किसी कदर आसान है, पर इश्क की आँच में जिन्दगी भर पारसाई के साथ जलते रहना मुश्किल है। इसलिये मेरे दिल में उनकी ताज़ीम[1] उनसे कम नहीं है . .. .।"

सैनिक इस बात चीत में ऐसे लगे रहे कि इनको समय बीतने का कुछ ध्यान न हुआ और एक घण्टा से अधिक व्यतीत हो गया। जब उनका चित्त हरनाम दास की ओर आकर्षित हुआ तब वे चौकन्ने होकर इधर उधर पूछ ताछ करने लगे। अन्त में पता लग गया कि सेठ हरनाम दास खिड़की की ओर से निकल भागा और कोठी में उसके परिवार का एक मनुष्य भी नहीं है। तब तो सैनिक क्रोध में

१—महिमा।

भरे दाँत पीसते उसकी खोज में निकले। पता लगाते लगाते मालूम हुआ कि वह मथुरा से मील भर पर एक जंगल में घुसता हुआ दिखाई दिया था। सैनिक शीघ्र जंगल की ओर दौड़े और बन में घुस पड़े। उन लोगों ने पत्ता पत्ता खोजा पर कहीं पता न लगा। बहुत देर पीछे साधू की एक कुटी दीख पड़ी, जिसमें दो साधू मृगछाला पर कमलासन लगाये और तीन तीन फाँको वाले विशाल तिलक मस्तक पर चढ़ाये, मुख पर और सारे अङ्ग में रामरज लपेटे वैजन्त की चार चार पाँच पाँच माला गले में डाले, सेल्ही टोपी पहने, आँखें बन्द किये माला फेर रहे थे। सैनिकों ने पूछा, "क्यों साधू जी; तुमने हरनामदास को देखा है?" एक साधू ने आँख खोल कर उत्तर दिया, "बाबा, मैं तो सेठ हरनामदास का नाम आपके मुंह से सुन रहा हूं। मैं तो जंगल छोड़ बस्ती में जाता ही नहीं। मुझको नगर के सेठ साहूकारों से तो कई प्रयोजन हा नहीं। मैं तो कन्द मूल पर ही जीवन निर्वाह कर लेता हूं। मेरी छोटी सी झोपड़ी आपके सामने खुली पड़ी है। आप भली भाँति सेठ हरनाम दास को देख लीजिये"। सैनिक झाँक ताककर निराश हो जंगल से हाथ मलते निकले और अपनी सेना में जामिले।

जब तीन चार दिन पीछे पापात्मा महमूद नगर लूट पाट कर चला गया और फिर शान्तिदेवी की प्रतिमा नगर में स्थापित हुई तो एक दिन एक साधू ने दूसरे साधू से कहा, "महात्मा गोपालदास जी, आपने जैसा मेरा उपकार इस संसार में किया और मेरी रक्षा के लिये जिस तरह अपनी बुद्धि की उत्कर्षता से मेरे प्रत्यक्ष रूप को गुप्त रूप में परिणित कर अघटित घटना दर्शायी और सत्य का पक्ष भी बचाया, मैं उसकी प्रशंसा करने और धन्यवाद देने में सर्वथा असमर्थ हूं।

मैं आपके इस महान उपकार से तो उऋण क्या हूंगा यदि मेरे वंशज पीढ़ियों तक सर के बल आप की सेवा करते रहें तब भी आपके असीम उपकार से निस्तार होना असम्भव है, किन्तु अब मुझको कई दिन बीत गये, अब मैं आप कीसेवा से बिदा होना चाहता हूं; पर यहाँ से प्रस्थान करने से पहले मुझको आपके रहस्य जाननेकी बड़ी उत्कण्ठा है। दया कर मुझसे बतलाइये कि आपको इस युवावस्था में ही संसार से वैराग्य कैसे हुआ और कब से इस आश्रम पर विश्राम हो रहा है और अन्न का त्याग कर कन्द मूल फलों पर निर्वाह क्यों हो रहा है ?"

गोपालदास उसकी बातें सुनकर कुछ विस्मित हो गया। आँखों में आँसू छा गये फिर मन को सम्हाल कर बोला, "महाशय, मैं अपना वृत्तान्त आप से क्या बतलाऊँ। मेरा जन्म भी एक प्रतिष्ठित वैश्य कुल में हुआ था। मेरे पिता बड़े भारी महाजन थे और धन सम्पत्ति उनके पास बहुत अधिक थी। किन्तु नगर में कुछ लोग उनके शत्रु बन गये थे। उन्हीं लोगों की प्रेरणा से उन पर राजद्रोह का झूठा कलङ्क आरोपित हो गया। अन्यायी राजा ने झूठ सच का निर्णय सुयोग्यता से नहीं किया। अन्त में उनको फाँसी हो गयी और धन सम्पत्ति दाम दाम सब राजा ने छीन लिया। मेरी भी खोज होने लगी। मैं उस समय केवल १५ वर्ष का बालक था। संसार का उत्तम मध्यम व्यवहार कुछ भी नहीं जानता था। विद्याध्ययन और शिक्षा में भी पूर्ण नहीं हो पाया था। उसी अवस्था में अनाथ के समान नगर छोड़ कर भागने पर विवश हुआ। उस समय मेरे ऊपर जैसी अनायास आपदा आ टूटी और मैं जिस भाँति निःसहाय हो गया था उसके कहने की आवश्य

कता क्या है ? आप स्वयम् ही समझ सकते हैं। कई दिन हमको उपवास करते बीत गये, पर जब किसी से याचना करने को चेष्टा करता था तो मेरे अन्तरात्मा से बड़ी ही घृणा उत्पन्न हो जाती थी और मुझको अपने मृत माता का बार बार रटाया हुआ यह दोहा स्मरण हो जाता था—

चलनो भलो न कोस को दुहिता भली न एक।
माँगन भलो न बाप सो जो प्रभु राखे टेक॥

पर अत्यन्त विवश होकर मुझको एक समय यह नीच कर्म करना ही पड़ा, मैं अपनी आत्मा का स्वयम् धन्यवाद करता हूं जिसने इस परिणाम से बड़ी ठोकर खायी और उस याचित वस्तु से मेरे उदर को अपवित्र होने से वञ्चित कर दिया। उसी समय मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया कि किसी जंगल में रह कर कन्द मूल फलों पर जीवन निर्वाह करूँगा, पर इस अधम कर्म को कभी न करूंगा और किसी से कुछ न लूंगा। मैं दूसरे ही दिन से जगल जंगल घूमता एक दिन इस बन में आ गया। यह स्थान मुझको कुछ रमणीक जान पड़ा। बस मैंने इसी स्थान पर यह फूस की कुटी डाल ली और आज बारह वर्ष हो गये जब से मैं इसी स्थान पर भगवत भजन करता हू। यद्यपि मेरा विचार ऐसा जीवन ग्रहण करने का कभी नहीं था। मैं इस कर्मक्षेत्र में जन्म लेकर कर्म करना ही अच्छा समझता हूं और कर्म वीरता से ही अपना और संसार का उपकार करते हुए ईश्वराराधन करना परमात्मा का मुख्य आदेश समझता हूं और यही मेरी स्वर्गीय जननी का दिव्य उपदेश थो। पर मैं आपसे कह चुका हूं कि वह मेरी अवस्था बिल कुल कच्ची थी और किसी से इस संसार में परिचय भी नहीं था। अतएव भगवत् की इच्छा ऐसी ही जान पड़ी और

इसी उपस्थित अवस्था में रहकर भगवत् भजन करने लगा। मेरी माता मुझसे बार बार कहा करती थी कि जो मनुष्य सब भाँति निराश होकर भी भगवान को नहीं भूलता उसको भगवान कभी नहीं भूलते। उस पर जितनी आपदाएँ आती है वह उसकी परीक्षा के लिए ही आती हैं—बस उसी दृढ़ उपदेश को धारण कर प्रभु को याद किया करता हूँ और अब मैं बड़ा सुखी हूँ" मुझको अब किसी इच्छा के पूर्ण न होने का दुःख नहीं है।"

यह बातें सुनकर वह पुरुष बड़ा विस्मित हुआ और थोड़ी देर तक मन में कुछ सोचता रहा, अन्त में गोपालदास से दण्ड प्रणाम कर विदा हो चला गया। हमारी पाठिकाएँ अब तो समझ ही गई होंगी कि यह दूसरे साधू सेठ हरनामदास ही थे। यह सैनिकों को सब्ज़ बाग़ दिखला कर नगर की कुजं गलियों से कावा काटते जल्दी जल्दी जँगल में पहुँचे। पर दिन का मामिला था इससे यह सैनिकों के पता पा जाने और पीछा करने से निश्चित नहीं थे। अतएव यह अपने छिपने के लिए कोई सुरक्षित स्थान खोजने लगे, पर उस खुले जंगल में दुष्ट सैनिकों की निगाह से बचने का कोई गुप्त स्थान न पा सके। अन्त में व्याकुल और सभीत होकर गोपालदास की कुटी में पहुँचे और उनसे अपना परिचय देकर शरण माँगी। गोपाल दास भी उनको अपनी छोटी सी कुटी में उसी रूप में छिपाने का कोई उपाय निश्चय न कर सके। अतएव उन्होंने सेठको साधू के रूप में रूपान्तर कर अपने समीप मृगछाला पर बैठा लिया और सैनिक इस नवीन वेश में सेठ को पहचानने में असमर्थ होकर चले गये। सेठ जिस दिन गोपालदास के आश्रम से विदा होकर चले गये उस दिन से तीन मास तक गोपालदास

की कुटी पर कोई नई बात नहीं हुई, न इस बीच में इनको सेठ हरनामदास का कुछ पता लगा। एक दिन भोर होने से कुछ देर पीछे एक युवक चार कहार और पालकी लिये हुए गोपालदास के आश्रम पर आया और विनीत भाव से दण्डवत कर बोला, "महात्मन्! मेरे पिता सेठ हरनामदास ने मुझको आपकी सेवा में भेजा है और बहुत प्रार्थना से कहा है कि आप दया कर अपने चरण कमलों से मेरे गृह को सुशोभित कर मुझे अनुग्रहीत कीजिये।" गोपालदास पहले तो कुछ रुके फिर कुछ सोच समझ कर पैदल चल कर सेठ की कोठी पर आ पहुँचे। सेठ हरनामदास इनको देखते ही अपने स्थान से उछल पड़े और गोपालदास को गले से लगा कर प्रेमाश्रु बरसाने लगे और अङ्ग में अङ्ग लगाये अपने कमरे में ले जाकर उन्हें एक उच्च आसन पर बैठा दिया। थोड़ी देर तक दोनों मित्रों में प्रेमालाप होता रहा, फिर सेठ ने कहा, "आज मैं आपको अपने एक प्यारे मित्र के घर ले चलूँगा। आज उन की एक नई कोठी में गृह-प्रवेश का उत्सव है।" यह कह कर गोपालदास का हाथ अपने हाथ में लेकर उठे और एक नवीन सुन्दर गाड़ी में जिसमें दो सुन्दर घोड़े जुते हुए थे और जो पहले से द्वार पर खड़ी थी, गोपालदास के साथ सवार हो गये। गाड़ीवान ने घोड़ों को चाबुक दिखलाया, गाड़ी चली और थोड़ी देर में एक परम विचित्र नवीन निर्मित कोठी के फाटक पर पहुंच कर खड़ी हो गयी। फाटक पर सुन्दर तोरन और वन्दनवार लगे थे और एक विचित्र नौबतखाना बना हुआ था। सेठ जी अपने मित्र को लिये पहिले एक ख़ाना बाग़ में गये जिसमें सुन्दर सुन्दर फूलों के छोटे छोटे पौदे लगे हुए थे और नाना प्रकार के मेवों

के नये नये वृक्ष सिलसिले के साथ लगाये गये थे। पक्की रविशें बनी हुई थीं। एक हौज जल से परिपूर्ण बीच बाग़ में विलक्षण मनोहर शोभा दे रहा था। फिर वहाँ से कोठी में पहुँचे और एक एक कमरा अपने मित्र गोपालदास को दिखलाने लगे। किसी किसी कमरे में बड़ी बड़ी दरियाँ बिछी थीं और उन पर नाना रङ्ग के अमूल्य कालीन बिछे हुए थे और चारों ओर सुन्दर सुन्दर तसवीरें टँगी थीं, पलँग आदि बिचित्र मखमल के गद्दों और तकियों से सुसज्जित थे। छतों में झाड़ फ़ानूस लटक रहे थे। किसी कमरे में खाने पीने और पाक बनाने और जल रखने के अनेक मनोहर बरतन सजे हुये थे। किसी कमरे में भाँति भाँति के उत्तम घी, तेल शक्कर, मिठाई नमक, मसाला आदि खाद्य पदार्थ ढेरों गँजे थे। किसी घर में नये नये ओढ़ने पहनने के वस्त्र खूटियों पर लटक रहे थे। कहीं मेज़, आराम कुर्सियाँ और साधारण चौकियाँ सजी थीं। यह सब देखते देखते दोनों मित्र एक बड़े कमरे में पहुँचे। वहाँ पर चार पाँच सेवक नौकरों की वर्दी पहने विनय-युक्त खड़े थे। एक बड़ी सी दरी बिछी थी उस पर एक नई गद्दी लगी हुई थी, एक ओर एक छोटी सी मेज़ पड़ी थी उसपर एक बड़ा सा आइना रक्खा हुआ था और मेज़ के सामने दो कुर्सियाँ बराबर बराबर लगी हुई थी और एक बड़ी सी सन्दूक गद्दी से थोड़ी दूर पर रक्खी थी। एक मुनीम कोरी कोरी बहियाँ लिये सुन्दर वस्त्र पहने बैठा था। मित्रों को आते देखी नौकर और मुनीम सब खड़े हो गये और सिर नवा कर फिर अपने अपने स्थान पर चले गये। दोनों मित्र दोनों कुर्सियों पर बैठ गये उनका सुन्दर प्रतिबिम्ब दर्पण में सुशोभित हो गया। सेठ ने गोपालदास

से कहा, "क्या आप मेरे मित्र को, जिनके गृह-प्रवेश का आज उत्सव है, देखना चाहते हैं ?"

गोपालदास ने कहा, "मैं उनको देख कर अवश्य हर्षित हूंगा।"

उस समय सेठ ने एक सेवक की ओर इशारा करके कहा, उनको जल्द लाओ। सेवक सिर झुका कर चला गया। सेठ ने मेज़ वाले दर्पण में गोपालदास के प्रतिबिम्ब पर उँगली रख कर गोपालदास से कहा, "देखिये अच्छी तरह पहचान लीजिये यही मथुरा के जंगल वाले साधू गोपालदास हमारे वह मित्र है जिनके गृह-प्रवेश का आज इस कोठी में उत्सव होने वाला है। जिन्होंने मुझसे वन में कहा था, "मैं कर्मवीरता से ही अपना और जगत का उपकार करते हुए ईश्वराराधना इस संसार का शुभ जीवन समझता हूँ।"

इतने में बाहर नौबत बजने लगी और एक चाँदी के सुन्दर थाल में चन्दन, रोली, अक्षत, पान, पूगीफल, हरितदुर्वादल, नवविकसित पुष्पमाला, केसर, कस्तूरी, दही, शर्करा, भाँति भाँति के पवित्र मोदक, धूप दीप, नैवेद्य आदि मङ्गल द्रव्य लिये और एक द्विजवर को आगे किये उस सेवक ने कमरे में प्रवेश किया। ब्राह्मण देवता शीघ्र "गणानां त्वा गणपतिर्ग्वं हवामहे" आदि वेद मन्त्र और गायत्री उच्चारण करने लगे। फिर आरती सज कर सत्यधाम निवासी महाप्रभू सत्य पुरुष का पूजन किया और लक्ष्मी, सरस्वती, शिवारूपिणी जगदीश्वर की दिव्य शक्तियों का अलग अलग आराधन कर गृहप्रवेशोत्सव का शुभ कार्य समाप्त किया और गोपालदास के मस्तक पर रोली चन्दन और अक्षत का तिलक लगा कर एक सुमन-माला उनके गले में डाल दी। फिर एक पुष्पमाला सेठ के गले

में पहना दो और फिर सब नौकरों को भी पूजा का प्रसाद बाँटा गया। तब सेठ ने मुनीम की ओर देख कर कहा, "बिन्द्रा यहाँ आओ, अपने स्वामी को पहिचान लो। मैंने तुम्हें तीन महीने से नौकर रख कर मुनीम का काम इन्हीं की इस नयी कोठी में काम करने के लिए सिखलाया है। देखो दस लाख रुपये जो तुम्हारे सन्दूक में है आज उनको साहु गोपालदास के रोकड़ बही में लिख लो और उस रुपये से गोपालदास जी के आज्ञानुसार वाणिज्य व्यवहार का काम सुयोग्यता से करो। अब यह कोठी यह रुपया यह सारा असबाब और नौकर चाकर गाड़ी घोड़े सब आज से गोपालदास जी के हैं।" फिर गोपालदास से मुनीम की ओर इशारा करके कहा, "देखिये तीन महीने की त्रिविध परीक्षा से मैंने इस मुनीम को सब प्रकार विश्वासपात्र, चतुर और सदाचारी पाया है। यह आपको सब प्रकार अपने कर्त्तव्य से सन्तुष्ट करेगा। यह कोठी और इसका सब सामान हमने इसी के प्रबन्ध से तैयार कराया है और इसी से हमने इस को अच्छी तरह से जाँच लिया है।"

गोपालदास ने मुनीम को ओर बड़े आश्चर्य से दो तीन बार सिर से पैर तक देखा और मुसकरा कर कहा, "मैं तो इसके शान्ति-स्वरूप से ही सन्तुष्ट हो गया। जो मनुष्य केवल तीन महीने में ऐसे बड़े अधिकार के जटिल कामों को सीख सकता है वह सब कुछ कर सकता है। पर मुझको इस विषय में आप से कुछ निवेदन करना है, आपने मेरे जैसे एक भिक्षुक का जैसा असीम आदर और उपकार विचारा है मैं कोटि मुख पाकर भी इस सुयश का वर्णन नहीं कर सकता। किन्तु आपको मालूम है कि मैंने किसी से दान ग्रहण करने के प्रति

कूल कैसी कठिन प्रतिज्ञा की है; अतएव मैं आपके इस उपहार के स्वीकार करने में शोक के साथ असमर्थता प्रगट करता हूँ। पर आप के इस उमंग भरे उपकार का तिरस्कार करना भी अपार अशिष्टता समझता हूँ। अब इसका एक उपाय हो सकता है। आप यह सब द्रव्य मुझको ऋण के तौर पर दीजिये और इस कोठी और इसके असबाब का एक मूल्य निर्धारित कर दीजिये। मैं आपके रुपयों से पूँजी बना कर वाणिज्य करूँगा और आपका रुपया और मूल्य चुका कर तब स्वतन्त्र वाणिज्य आरम्भ करूँगा।" यह सुन कर सेठ ने बड़ी हठ की। पर गोपालदास ने अपने प्रस्ताव के विरुद्ध एक बात भी स्वीकार नहीं की। अन्त में यह ठहरी कि १० लाख की जगह १५ लाख ऋण दिया जावे और उसी से वाणिज्य आरम्भ हो। उस समय सेठ हरनाम दास कुर्सी से खड़े हो गये और विह्वल होकर बोले, "महात्मा गोपाल दास जी! यद्यपि आपने मेरे मानसिक उमंग में कुछ परिवर्तन कर दिया पर मैं इससे किञ्चित अप्रसन्न न हुआ वरन् मेरी आत्मा आनन्द में मग्न हो गयी। क्योंकि आपने अपने आत्म-सम्मान और उच्च विचार का ऐसा अनुपम और ऐसा अनूठा दृष्टान्त दिखाया जो जगत् के लिये और विशेषतः भारतवर्ष के लिए एक अपूर्व शिक्षा है।" हा भारत! क्या अब तू गोपाल दास की सी सन्तान नहीं पैदा करेगा। आज दिन जो तेरी समूह की समूह सन्तान आत्म-सम्मान विसर्जित कर इस अधम कर्म में प्रवृत्त होकर तेरे वक्षस्थल पर याचना करती हुई रेंग रही है और तेरे गौरव गरिमा का ध्वंस कर रही है क्या आज तुझको इस से लज्जा नहीं आती? आती तो अवश्य होगी, पर क्या करे, तू भी विवश है, तुझे शिक्षिता माताओं का अभाव

है फिर तेरी सन्तान को आत्म-सम्मान और उच्च विचार की शिक्षा कौन दे ?

निदान उसी दिन से वाणिज्य का काम जारी हुआ। बिन्दा के सुयोग्य व्यवहार से दो वर्ष में चार लाख का लाभ हो गया। तब सेठ का रुपया कुल वापस कर दिया गया और एक लाख कोठी आदि का मूल्य दिया गया और तीन लाख की पूंजी से गोपालदास का स्वतन्त्र वाणिज्य चलने लगा और दिन दिन अद्भुत उन्नति होने लगी। सेठ हर-नाम दास ने अपने एक दायाद की सुन्दर सुशीला युवती कन्या से गोपाल दास का ब्याह भी करा दिया और अब गोपाल दास पूरा गृहस्थाश्रम धारण कर भगवद्भजन करने लगे। तीसरे साल के आरम्भ में गोपालदास ने बिन्दा की सम्मति से एक धर्म क्षेत्र खोला जिसमें अन्धे, अपाहिज, अनाथ, लँगड़े लूले, बूढ़े, विपद्ग्रस्त रोगी आदि मनुष्यों को सन्ध्या समय भोजन देने का प्रबन्ध किया गया और प्रति दिन कोठी का काम समाप्त कर बिन्दा और गोपाल दास दो घंटा इस क्षेत्र में बैठ कर अभ्यागतों को पवित्रता से बना बनाया अन्न बाँटते थे। अभ्यागतों को बिन्दा अपने हाथ से भोजन देता और आदर पूर्वक खिलाता था।

एक दिन शरद पूर्णिमा की उजियाली रात में गोपालदास धर्मशाला में कुर्सी पर बैठे थे और बिन्दा अभ्यागतों को भोजन दे रहा था। इतने में एक दुर्बल अभ्यागत एक मैला फटा हुआ वस्त्र कमर में लपेटे और एक टूटी टेकनी से भूमि टेकते क्षेत्र के आँगन में आया और अन्न के लिए याचना की। बिन्दा एक थाल में भोजन की सामग्री लेकर अभ्यागत के पास गया और सामने रख कर बोला, "तुम बैठ कर भोजन

करो मैं तुम्हारे पीने के लिये जल अभी ला देता हूं।" यह कह कर बिन्दा वहाँ से हटने लगा, अकस्मात् उसकी पूरी दृष्टि अभ्यागत के मुखमंडल पर जा पड़ी। उस समय बिन्दा कुछ ठिठक गया और फिर पूरी दृष्टि जमा कर देखा और एक दम चिल्ला उठा, "स्वामी! स्वामी! हे भगवान! यह तुम्हारी क्या दशा है क्या मैं भ्रम में हूँ? क्या तुम हमारे स्वामी दीपचन्द नहीं हो? नहीं, नहीं, यह भ्रम नहीं है तुम्हीं हो। हा दैव! हा विधाता! यह तुम्हारा कैसा शोक-जनक, कैसा भयंकर, कैसा विकराल चरित्र देख रहा हूं।" उस समय अभ्यागत ने सर नीचा कर लिया और रोते हुए स्वर से वह बोला, "बिन्दा, तुम भ्रम में नहीं हो, मैं ही वह हत भागी दीपचन्द हूं जिसके दुराचारों से दुखी हो कर तुमने नौकरी छोड़ दी थी। किसी का दोष नहीं यह सब अलङ्कार मुझको मेरे दुष्कर्मों ही ने प्रदान किया है। अब मुझको ज्ञान है अब मैं पछताता हूं, पर सब व्यर्थ! अब वह समय हाथ से निकल गया। यह बात चीत सुन कर गोपाल दास भी वहाँ पहुँच गया और अभ्यागत की ओर देखकर बोल उठा,, "प्यारे बिन्दा! मैं भी वही मनुष्य हूँ जिसको तुम्हारे स्वामी दीपचन्द ने उस जाड़े की रात में तुम से गरदन में हाथ डलवाकर फाटक के बाहर निकलवाया था और तुमने मानस सकल्प द्वारा अपने आहार से मेरा उपवास बदल लिया था। यद्यपि मैंने उसको ग्रहण नहीं किया वरन् एक गऊ को खिला दिया था। वह सवत् १०६३ था, यह १०७८ है। आज १५ वर्ष पीछे वही पुराना दृश्य किस विलक्षण रीति से हम लोगों की दृष्टि के सामने आ गया है। हा! इस काल कौतुकी की कैसी विचित्र लीला है। बिन्दा! हमने तुमको नयी कोठी में पहले ही दिन पह-

चान लिया था पर तुमने नहीँ पहचाना।" इस घटना के पश्चात् थोड़ी देर तक सन्नाटा हो गया और सब लोग चित्रवत् खड़े रह गये। थोड़ी देर पीछे जब वह क्षणवर्तिनी निस्तब्धता भङ्ग हुई, बिन्दा दीपचन्द की दशा पर फूट फूट कर रोने लगा। उस समय दीपचन्द ने कहा, "बिन्दा! शोक मत करो अब हमने इस आपद् काल में संसार से बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त कर ली है। हम लोग व्यर्थ परमात्मा पर दोष रखते हैं। भगवान की लीला जैसी शोक जननी वैसी ही आमोद वर्धिनी जैसी भय-कारिणी वैसी ही भयहारिणी जैसी कठोर कालिका वैसी ही सजीवन-मालिका, और जैसी अपयशी वैसी ही सुयशमयी भी है। पर इन कलाओँ को अपने अनुकूल व प्रतिकूल बनाना केवल हमारे कर्मों ही के अधीन है। शुभकर्मों का फल मीठा दुष्कर्मों का विषैला निश्चय और अडोल है। यह वेद विहित और विश्व-स्वीकृत अटल सिद्धान्त है। भव सदा इसी नियम का पालन किया करता है। कर्म और फल के बीच में थोड़ा बहुत काल का पर्दा होता है वही हमारे सामने अज्ञान और अंधकारमय दीवार बन कर खड़ा हो जाता है। इसी कारण हम शुभ कर्मों के फल से निराश अशुभ कर्मों के फल से निडर हो जाते हैं। यदि कर्मों का फल तत्काल मिला करता तो हम ऐसे स्वेच्छाचारी न बनते।" यह बातें सुन कर बिन्दा का विस्मय कुछ घट गया और रोना रुक गया। फिर उसने दीपचन्द से कहा, "स्वामी अब मैं आपको इस दुर्दशा में नहीं देख सकता। अब आप कहीं न जाइये। मैं अपने वेतन से आधा वेतन और अपने आहार मे आधा आहार आपको दूँगा, आप यहीं ठहर जाइये।" गोपाल दास ने कहा, "प्यारे बिन्दा! जो मनुष्य अपने आहार से भूखों

का उपवास बदलता है यदि वह आधे वेतन पर काम करे और आधे पेट पर निर्वाह करे तो परमात्मा लज्जित होता है। मैं दीपचन्द को शिरोधार्य करुंगा। भगवान ने यह सम्पत्ति मुझको मेरे ही विलास के लिये नहीं दी है। इसमें ऐसे सब जीवो का भाग है।

दीपचन्द जी मेरी कोठी में मेरे साथ रहेंगे। जो कुछ मैं भोजन करूंगा और जो कुछ पहनूंगा वही यह भोजन करेंगे और वही पहनेंगे। अब ये वृद्ध हैं कुछ काम नहीं कर सकते। मैं स्वयम् इनकी सेवा करुंगा। मेरे नौकर चाकर इनकी आज्ञा पालन करेंगे और समय समय पर तुम भी अपने स्वामी की सेवा कर के सौभाग्य बढ़ाया करना। निदान दीपचन्द उसी दिन से गोपालदास के संग रहने लगे और सुखी हो गये। परमात्मा बड़ा न्यायकारी और दयालु है। जब मनुष्य अपने कर्मों पर पछतावा कर क्षमा माँगता है तो वह अवश्य अपने दया का हाथ बढ़ा कर उसका सन्ताप हरण कर लेता है।



सुसंग का फल



तपोभूमि भृगुक्षेत्र की पञ्चकोशी परिक्रमा में कमलेश्वर नाथ महादेव का एक सुन्दर मंदिर प्राचीन काल का बना हुआ मिलता है। इस विचित्र शिवमन्दिर के समीप एक रमणीय विशाल सरोवर है जो पुन्यदह के नाम से विख्यात है। परिक्रमा करने वाले यात्री एक रात इस पुनीत स्थान पर भी निवास करते हैं। यह स्थान भृगु आश्रम से पश्चिम दिशा में पाँच कोस की दूरी पर है। इस मनोहर सरोवर में अगणित कमल खिले रहते हैं, जिन पर यूथ के यूथ भ्रमर सदा गुंजार किया करते हैं और कमल कलिकाओँ का मधुर रस पान करते हैं।

प्राचीन काल में उस अलि-समाज में श्यामबिन्दु नामक एक बडा ही शीलवान और सदाचारी मधुकर रहा करता था। एक दिन श्यामबिन्दु कमल रस पान करके सरोवर के तीर वाले एक रसाल वृक्ष की शाखा पर बैठा हुआ आनन्द से गुनगुना रहा था। इतने में विषगन्ध नामक एक गुबरीला उड़ता हुआ श्यामबिन्दु के सामने आया और विनीत भाव से कुछ दूर हट कर उसी शाखा पर बैठ गया। श्यामबिन्दु अपने नये अतिथि को देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ और बड़े प्रेम से स्वागत करके मधुर स्वर से सम्भाषण करने लगा।

"महाशय! मैं आप से परिचित होने का बड़ा उत्सुक हूं और दास की जो सेवा स्वीकार करने के लिए अनुग्रह हुआ है, उसके जानने के लिए भी बड़ी श्रद्धा है।"

विषगन्ध बड़ा लज्जित होकर बोला, "महानुभाव! मैं अपना परिचय आप से क्या दूँ। मैं एक ऐसी पतित जाति का प्राणी हूँ कि संसार को मेरे नाम ही से घृणा उत्पन्न हो जाती है और यदि मेरा अंग किसी से स्पर्श हो जाता है, तो उसको तत्काल ही प्रायश्चित्त करना पड़ता है, अतएव जाति परिचय देने में मुझको आप से पवित्र जाति वाले के सम्मुख बड़ा संकोच उत्पन्न हो रहा है।"

श्यामबिन्दु ने कहा, "महाशय! जिस पवित्र, उन्नतिशील, और सभ्य जाति में किसी गिरी हुई जातिके उठानेकी सामर्थ्य नहीं है, जिस जाति में अपने से पीछे पड़ी हुई जाति को आगे बढ़ाने का उत्साह नहीं हैं, जो बढ़ी हुई जाति अपने से छोटी जातियों से घृणा करती है, वह उन्नतिशील, सभ्य, पवित्र, और बड़ी जाति कहलाने की अधिकारिणी किस तरह हो सकती है? मेरे विचार में तो ऐसी स्वार्थ-प्रिय जातियाँ पतित से भी पतित और अधम से भी अधम हैं। आप कुछ शंका न कीजिए, मुझको अपना पूरा पूरा परिचय देकर कृतार्थ कीजिए।"

उदारशील महात्मा श्यामबिन्दु की बातें सुन विषगन्ध बड़ा ही हर्षित हुआ और उसके निराश हृदय में एक नई आशा अंकुरित हो आई और आँखों में आँसू भर कर गद्‌गद् स्वर से बोला, "स्वामी! मैं जाति का गुबरीला हूं। आप जानते होंगे कि मेरी जाति के सब प्राणी जन्म से विष्टा पर ही जीवन निर्वाह करते है। पर मेरा चित्त इस नारकी जीवन से अत्यन्त दुःखी और असन्तुष्ट हो रहा है। मैं इस पतित और घृणित अवस्था में जीने से मरना ही उत्तम समझता हूं। पतंग श्रेणी में भ्रमर जति का आकार हमारी जाति के आकार से कुछ २

मिलता जुलता है। यह सोच कर कई दिनों से मेरे विचार में यह बात ठनी हुई थी कि एक बार उसी भ्रमर जाति के किसी सज्जन प्राणी से मिल कर इस अधम जीवन से उद्धार पाने में सहायता प्राप्त करने की चेष्टा करूँ। अतएव उड़ते उड़ते आपकी सेवा में चला आया हूँ। अब आपके उदार विचार में जैसा आवे कीजिये। शरणागत को शरण पुकारने से अधिक कोई अधिकार नहीं है।" श्यामबिन्दु उस दीन पतंगे की दशा पर बड़ा ही दुःखी हुआ और करुणा के मारे उसकी आँखें डब-डबा गईं। वह कहने लगा, "प्यारे मित्र! क्या तुम यह समझते थे कि श्रेष्ठ जातियों का चिह्न छोटी जातियों से घृणा करना ही है? क्षमा करो। यह तो तुम नीच से नीच, उदारता-शून्य और स्वार्थ-प्रिय जातियों का कलुषित कलंक उच्च जातियों पर आरोपित कर रहे हो।"

विषगन्ध बोला, "श्यामबिन्दु जी! आप सतगुणी जीव हैं, अतएव आपको मेरी बातों पर इतना आश्चर्य हो रहा है। यदि आप आँख खोल कर देखें, तो आज कल आपको सहस्रों दृष्टान्त ऐसे ही मिलेंगे। आप देखेंगे कि एक धनी आदमी दरिद्र से, बलवान दुर्बल से, सुन्दर कुरूप से, गोरा काले से किस प्रकार घृणा करता है। आप एक उदार चरित और उच्च विचार वाले जीव हैं, अतएव आप समझते हैं कि संसार में सब बड़ी कहलाने वाली जातियां गिरी हुई जातियों को ऊँचे चढ़ाने की चेष्टा किया करती हैं, पर इस विषम युग में दशा बिलकुल विपरीत है। नीचे से ऊँचे चढ़ाना तो बड़ी बात है। आज एक बढ़ी हुई जाति गिरी जाति से सम्भाषण करने में भी अपना अपमान मानती है और सम्भाषण भी जाने दीजिए, वह उसको अपने बराबर एक ही राजमार्ग पर चलते देख

कर भी अपनी हीनता समझने लगती है। वह उसको पैदायशी गुलाम और परिश्रमी बैल से न अधिक समझती है और न अधिक पनपने देना चाहती है। देखिए ! इस भारतवर्ष ही में देखिए, आर्य जाति आदि-सभ्य समझी जाती है और यह जाति संसार की सब जातियों से श्रेष्ठ कही जाती है। यह वेद और दर्शन की अभिमानी है किन्तु नीच जातियों के साथ साथ इसका व्यवहार देखिए। यह अपने सहधर्मी डोम, चमार, दुसाध भंगी, धोबी, मुसहर आदि गिरी जातियों के साथ कैसा अनिष्ट व्यवहार करती है। इनको उठाना, सभ्य बनाना, इनको मानव-सत्व प्रदान करना तो एक ओर रहा, इनको छूना तक अपनी मान हानि जानती है। अब बतलाइए, इस आर्य जाति को हम क्या समझें ?"

श्यामबिन्दु दुखी होकर बोला, "महाशय ! आप सच कहते हैं। यह दृष्टान्त है तो अखण्डनीय किन्तु आर्य जाति इसका फल भी तो भाग रही है। आप नहीं देखते वह किस तरह दिन रात पैरों के नीचे कुचली जारही है। इस हाथ दे उस हाथ ले। यह ख्याली पुलाव भले ही पकाया करे और इसको सावन की हरियाली ग्रीष्म तक न भूले। पर काल की धारा और कर्मों का प्राबल्य तो इसके रोक रुक नहीं सकता। अस्तु, संसार में जो होता है, होने दीजिए। अब आज से आप मेरे ही आश्रम में निवास कीजिए और अब मलिन भोजन त्याग कर मेरे कुञ्ज बन में सौरभामृत पान किया कीजिए।"

निदान उसी दिन से दोनों मित्र उसी स्थान पर रहने लगे। विषगन्ध नित्य प्रातःकाल कुसुम-बन में अपने मित्र

श्यामबिन्दु के साथ प्रवेश करता और मधुर पराग रस पान कर सन्ध्या समेत आश्रम पर लौट आता था। महीने दो महीने में श्यामबिन्दु ने विषगन्ध को अपने अलि-समाज में एक एक व्यक्ति से परिचय करा दिया और समाज की रहन-सहन भली भाँति सिखला कर पूरा सभ्य बना दिया।

एक दिन बसन्त ऋतु के अन्त में श्यामबिन्दु और विषगन्ध दो पृथक पृथक कमल कटोरों में रस पान कर रहे थे। संध्या होने लगी, सूर्य अस्ताचल की ओर झुक पड़े। भ्रमर वृन्द कमल गुफाओं को छोड़ छोड़ अपने अपने आश्रमों को उड़ने लगे। श्यामबिन्दु भी उड़ कर चला गया, किन्तु विषगन्ध उस दिन एक नव विकसित कमल में ऐसा मोहित हो रहा था कि उसको समय की सुध बुध सब खो गई थी। इधर सूर्यास्त होते देख कमल धीरे धीरे संकुचित होने लगा और अन्त में एक दम सम्पुटित हो गया। कुछ देर बाद जब वायु की न्यूनता से विषगन्ध को साँस लेने में कठिनता प्रतीत होने लगी, तब उसका ध्यान अपनी दशा पर आकर्षित हुआ उस समय उसके चित्त में बड़ा उद्वेग उत्पन्न होने लगा और जीवन की आशा डाँवाडोल हो चली। तब उसके चित्त में आया कि कमलदलों को कतर कर बाहर निकल जाऊं पर फिर सोचने लगा कि भ्रमर जाति का यह आचरण नहीं है कि वह अपने प्यारे कमल को अंग भग करके अपनी प्राण-रक्षा करे। यदि ऐसा होता तो कितने ही भ्रमर सम्पुटित कमल गुफाओं में रुद्ध होकर क्यों जान देते? क्या जो भ्रमर काठ को काट कर चूर्ण कर देते हैं, उनके लिए कोमल कमल-दलों का कतर डालना कोई कठिन काम हो सकता है। यह सोच कर विषगन्ध उदास हो गया और अपने मन में अनेक

तर्क वितर्क करने लगा। उस समय अकस्मात् उसको श्याम-बिन्दु की अनेक भाव-पूर्ण शिक्षायें स्मरण हो आई और मन ही मन कहने लगा, "हा मित्र! तुम धन्य हो, तुमने मुझको नरक से उठा कर एकदम स्वर्ग में पहुँचा दिया। क्या मैं कोटि जन्म भी तुम्हारे उपकारों का बदला दे सकता हूं। इस समय इस विकट संकट की अवस्थामें भी तुम्हारी ही शिक्षाएँ जीवन अवलम्ब हो रही हैं और हमारी गिरती हुई आत्मिक, मानसिक और शारीरिक शक्तियों में नव शक्ति प्रदान कर रही है। तुम सच कहा करते थे कि उच्च जाति बनना सहज नहीं है। उच्च जाति को सदा विलास ही विलास नहीं है, समय समय पर जातीय मान, और धर्म की रक्षा में उसको काल ही से समर-सम्मुख भी होना पड़ता है और जान की बाजी बदनी पड़ती है। इस जातीय गौरव का आदर्श सदा काल-कष्ट ही के साँचे में ढल कर तैयार होता है। जो जातीय वीर ऐसी विकराल काल युद्ध में अड़ा रह गया, मानो वह जाति का शृंगार बन गया, पर जिसके पैर उखड़ गये, वह मानो जातीय मयंक का कलंक बन गया। उच्च जातीय नरवरों और नारी रत्नों की परीक्षा सदा संकट, दुर्दैव और दुरापद के ही समय में होती है। देखो, सीता आर्य जाति की आदर्श रमणी थी। जब उसने पुरुषोत्तम अवधेशकुमार रामचन्द्र से विवाह किया, उसके विलास की आशाओं का क्या कहना था और उसने राज बधुओं का अलौकिक विलास किया भी, किन्तु युवावस्था में ही उसको कैसे विकट संकट से सामना करना पड़ा। यदि उसने परीक्षा पूर्ण-वन यात्रा कठिन संकट से पीठ दिखलाई होती, तो वह आज आर्य गगन में सूर्य के समान

कैसे विसजती ? मातेश्वरी ! तू धन्य है। सच बता, तू उस सघन वन में किराती कन्याओं और युवतियों को प्रेम भरे मधुर स्वरों से पुत्री और भगिनी कह कर पुकार रही थी या इस अनन्त आकाश-गर्भ को हमारे जातीय गौरव के मनोहर रागों से चिरस्थायी रूप में परिपूर्ण कर रही थी। जगज्जननी जानकी ! तुम्हीं ने, नहीं तुम्हारे पति मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र जी ने भी, उनको पुत्र पुत्री ही समझा था। गोस्वामी तुलसीदास उनका यह मनोहर आचरण हमको बतला गये हैं—

"बचन किरातन के सुनत जिमि पितु बालक बयन।"

हा पिता ! तुम आर्य वंश के मुखोज्वल कहने में जैसा अपूर्व आदर्श दिखला गये, आज संसार की कोई जाति ऐसे आदर्श का स्वप्न में भी निशान दे सकती है ? भला कोई कहे तो सही, जगत के किस राजकुमार ने शवरी सी पतित और असभ्य जातीय रमणी को अभेद समता प्रदान करने के लिये जूठे बेर खाये है। और किसने राज विलास छोड़ पिता के वचन पूरे करने के लिये नंगे पैर वन यात्रा के लिये सानन्द प्रस्थान किया है। आर्य महिलाओ ! गिरी जातियों को उठाना और उनको सभ्य बनाना स्त्री और पुरुष दोनों का समान धर्म है। तुम पुरुषों की सहधर्मिणी अर्धाङ्गिनी कहलाती हो। विना तुम्हारी सहायता के पुरुष किसी कार्य में अग्रसर नहीं हो सकते। उनके एक ही पैर और एक ही हाथ है। जब तक तुम उनके अङ्ग की पूर्ति नही करोगी, उनके किये कुछ नहीं हो सकता। देखो, भारत की नीच जातियों का तिरस्कार करते करते तुम्हारा जातीय बल कैसा छिन्न भिन्न होता चला जाता

है और तुम पर स्वार्थपरता और अत्याचार का कैसा काला कलंक लग रहा है।

अच्छा यह तो वार्ता-वारि-प्रवाह में एक विलक्षण तरंग उठ गया। अब हम विषगन्ध के मूल निबन्ध के साथ आगे चलते हैं। विषगन्ध को उस कालकोठरी में जब श्यामबिन्दु की अलौकिक शिक्षाएँ याद आ गईं तो उसके अन्तर में एक नये जीवन का सञ्चार हो आया और उसकी कष्ट सहने वाली शक्ति अतुल और अपरिमित रूप में बढ़ कर दृढ़ हो गयी फिर तो वह काल-रात्रि उसको विलास-रात्रि सी सुगम हो गई और सहज में कट गई।

अब सूर्योदय से पहले एक दूसरी घटना उपस्थित हुई। उसी अनुदय बेला में मन्दिर का पुजारी पूजा के लिए कमलों को तोड़ने लगा और तोड़ते तोड़ते जिस कमलसम्पुट में विषगन्ध बन्द था, उसको भी तोड़ लिया और फूलों का दोना लिये शिव मन्दिर में पहुँचा और एक एक-करके सब फूल शिव मस्तक पर चढ़ा दिये। फिर पूजा विसर्जन कर अक्षत, फूल, धूप, दीप नैवेद्य आदि सब शिवार्पित सामग्री एक अँगौछे में लपेट कर गंगा में बहाने के लिए सुरसरि तट पर पहुँचा और ज्योंही उसने वह सामग्री गंगा जल में झटका देकर फेंकी, त्योंही वायु के और धक्के से उस सम्पुटित कमल का मुख खुल गया और विषगन्ध कमल कारागार से निकल कर जगत-जननी पतितोद्धारिणी के जाह्नवी जल में गोते लगाने लगा। कुछ देर पीछे जब खुले वायु में साँस लेने से उसमें पूर्ववत् शक्ति का संचार हुआ और पवित्र जाह्नवी जल पान कर पूर्ण पावन हो गया तब धीरे धीरे तटस्थल पर पहुँचा। वहाँ एक पुराना पीला

मण्डूक बैठा हुआ यह सब कौतूहल देख रहा था। उसने विषगन्ध से पूछा, "भाई! तुम तो जाति के गुबरीले आमिष भोजी पतंग श्रेणी में सब से नीच गिने जाते हो, तुमको कमल पुष्प में वास कैसे मिला? फिर तुमको शिव मस्तक पर चढ़ने का गौरव कैसे प्राप्त हुआ, क्योंकि पुजारी तो नित शिवार्पित सामग्री ही गंगा में फेंकने को लाता है तुम कमल ही से निकलते दीख पड़े हो और आज यह गंगा स्नान का पुनीत फल भी तुमको अपूर्व ही मिला। यह सारी बातें मुझको आश्चर्य जनक रहस्य सी प्रतीत होती हैं। दया कर अपना पूरा वृत्तान्त सुना कर मेरा आश्चर्य दूर करो।"

विषगन्ध बोला, "गंगावासी मण्डूक महाशय, आपका कहना बहुत ठीक है। मैं अवश्य उसी पतित जाति में जन्मा हूं। पर सज्जनों और महात्माओं की संगति का फल अलौकिक और अपूर्व है। आपने गोस्वामी तुलसीदास जी का वचन सुना होगा। सतसंग की महिमा में उन्होंने कहा है—

"काक होहिं पिक बकौ मराला।"

मुझको यह प्रतिष्ठा, यह पात्रता, यह गौरव, यह अनायास कुञ्ज-विलास, यह भ्रमर सज्जन मण्डली, यह देव दर्शन, यह गंगार्चन—सब कुछ उच्च भ्रमर जाति के एक महात्मा श्याम बिन्दु जी की सेवा और संग से प्राप्त हुए हैं, जिनकी असीम कीर्त्ति को मैं कोटि मुख पाकर भी गान नहीं कर सकता।"

यह सब वृत्तान्त सुन कर मण्डूक ताना देकर बोला "और जान के लाले भी तो उसी सुसंग की बदौलत पड़े थे।"

विषगन्ध बोला, "महाशय! आपने विचार करके नहीं

कहा। बिना कष्ट उठाये, बिना परिताप सहे, बिना अपने को वारे, परमात्मा किसी को सच्ची बड़ाई का पात्र नहीं बनाता। यह सदा कठिन तपस्या से प्राप्त होती है। भगवान ने इस दात के लिए इसी की शर्त रक्खी है। जो कठिनाइयों से भागता है उसका जीवन महत्वपूर्ण हो ही नहीं सकता। परमात्मा अपने नियम के विरुद्ध कोई काम नहीं करता।"

यह बातें सुन मण्डूक द्वेष से जलकर बोला, "अजी! अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना दूसरी बात है, पर लाख सर पटकने पर भी गुबरीला भ्रमर कदापि नहीं बन सकता।"

विषगन्ध फिर नम्र होकर बोला, "मण्डूक जी! चाहे मैं गुबरीला से भ्रमर न बन सका हूं, पर आप इस बात को असम्भव कैसे बतलाते है? क्या विश्वामित्र जी अपने शुद्धाचरण से क्षत्री से ब्राह्मण नहीं बने? क्या रविदास जी चमार-समाज में भी पैदा होकर आर्य जाति के बड़े बड़े पुरुषों के गुरु नहीं बने? क्या कृष्ण भगवान ने श्वपच की महिमा दिखला कर मुनियों का जातीय अहंकार दूर नहीं किया? क्या ये सारे आदर्श जो पूर्वजों ने दिखलाये सब निरर्थक ही है? नहीं नहीं, उन्होंने यही सिखलाया है कि धीरे धीरे गिरी जातियों को भी अपनाते चलो, उनको सभ्यता सिखलाते चलो और ज्यों ज्यों उनमें सभ्यता आती जावे, उनको अपने अंग में मिलाते जाओ। मण्डूक जी, उन्हीं पूर्वजों ने कहा है—

"जाति न पूछो काहु की मुख्य चरित्र महान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान॥"

सास का चित्र



सारी दुनिया में शिक्षा की आवश्यकता बालक और बालिकाओं को है, पर भाग्य के फेर से भारत के बूढ़े और बूढ़ियों को शिक्षा की आवश्यकता है। यह सच है कि बूढ़े तोते पढ़ नहीं सकते, पर मेरे विचार में परिश्रम द्वारा कुछ साधारण बातें अवश्य सिखलाई जा सकती है। विशेषतः इस देश की सास कहलाने वाली महिलाओं को इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता जान पड़ती है। यहाँ की अधिकांश सासुओं की दशा बहुत ही शोचनीय है। उनकी क्रूरता, निर्दयता, और अमानुषी व्यवहार से बहुओं के स्वास्थ्य, हृदय, मस्तिष्क, चरित्र और शान्ति पर जैसा कठोर दुष्प्रभाव पड़ रहा है और समाज में जैसी अशान्ति और पाप का राज फैल रहा है उसके लिखने में लेखनी का मुँह भी लज्जा से काला हो जाता है। ऐसी दुष्टा सासुओं के घोर अत्याचारों के अभ्यास के लिए मानो बेचारी बहुएँ एक यंत्र सी बनी हुई हैं, जिनके द्वारा वे कर्कशाएँ स्वतन्त्रता से मनमाना अपने अभ्यास की क्रिया सिद्ध किया करती हैं।

गाली, झिड़की, बात बात में कोसना, उन पर भाँति भाँति के निन्दनीय कलंक आरोपित करना, चोरी चटोरापन के अकारण दोषों से उनको अपमानित करना, उनके कोमल अंगों को ठौर कुठौर चपत, धौल, घूसों और डंडों से पीटना तो उनका एक साधारण व्यवहार और नित्याचार है, पर यह

शोक-सवाद सुन कर पत्थर का कलेजा भी पानी हो जाता है कि कभी कभी वे राक्षसी निस्सहाय बहुओं को गरम चिमटों से भी दाग दिया करती हैं।

घर के सारे काम जो चार आदमियों से भी सुगमता पूर्वक नहीं किये जा सकते, निर्दयी सास उन बेचारी दुर्बल बहुओं के सिर पर छोड़ देती हैं और सब काम समय से पहले तैयार चाहती हैं। यदि विलम्ब हुआ (और विलम्ब होना प्राकृतिक है) तब क्या कहना है, फिर तो सासु जी की मानो माँगी मुराद पूरी हो गई। फिर जितना चाहें उस दीन अबला की हजामत बनावें, इसका उनको पूरा अधिकार है। अपने हृदय की पापमयी मोरी खोल कर उस हत भागिनी बहू को जिस गड़ढे में चाहें बहा दें, इसका उनको पूरा अधिकार है।

इतने अत्याचारों पर भी क्रूर-चरिता सास यह नहीं जानती कि उस बेचारी मातृ वियोगिनी, मनुष्य की कन्या ने दोपहर तक मुँह भी धोया है और अन्न का कोई कण भी उसके मुँह में गया है या अभी तक उनके लिए पूरी एकादशी ही है।

देखो, जाड़ों की हिममयी रजनी से सनसनाती हुई ठंडी हवा में बारह बजे एक पतली साड़ी पहने हुए खुले आँगन में सर्दी से कांपती हुई एक रमणी ठंडे जल में बरतन मल रही है और बार बार सिसकती और दाँत खटखटाती जाती है। इस शीतकाल में इस युवती को बड़ी निर्दयता के साथ कौन सता रहा है? क्या यह काम सूर्य निकले नहीं हो सकता था? हो क्यों नहीं सकता, पर सास जी के क्रूर मानस को सन्तोष कैसे हो। वही इस अत्याचार की उत्तरदायिनी हैं।

ग्रीष्म की कड़ी दुपहरी में धूएँ से भरी हुई एक बेझरोखे वाली तंग कोठरी में एक युवती घंटों से रसोई बना रही है। उसका सारा अंग, सम्पूर्ण वस्त्र पसीने में डूब रहे है। आँखों से साफ़ दिखाई भी नहीं पड़ता। धूएँ से उसका मस्तिष्क भर गया है, एक दर्जन से अधिक खाने वालों की रोटी तैयार करनी है, पर सहायता के लिए आदमी के बदले एक बिल्ली भी उसके पास झाँकने नहीं जाती। विचार करो, इस अनाथ महिला को इस यम-यातना में डाल कर कौन पाप कमा रहा है? कोई नहीं, वही सास जी हैं।

एक जीर्णांगी अबला जिसकी आँखे चढ़ी हुई हैं, शरीर पर हाथ रखते ही हाथ जलने लगता है, उसका सिर पीड़ा से फटा जा रहा है, अभी घर आँगन बुहार कर पाकशाला में गई है। जूठे बरतनों को आँगन में निकाल कर गोबर मिट्टी से पाकशाला लीप कर आंगन में आयी है। बरतन मल रही है और स्वांस स्वांस पर कराह रही है। एक पड़ोसिन आकर आश्चर्य से पूछती है, "अरी! इसको क्या हुआ है, यह तो बीमार है, ज्वर से इसका शरीर भस्म हो रहा है, यह धंधा कैसे करतीहै?" एक दूसरी महिला उत्तर देती है, इसको क्या हुआ है, तुम इसका छल छिद्र नहीं जानतीं, "इसने काम से जी चुराने के लिए यह कला प्रकट की है। यह अठवारों से यही कला दिखला रही है। यह डाकर बुलवाना चाहती है और मर्दों को अपनी बीमारी का समाचार सुनाने के लिए उत्सुक है। बहिन! यह अपने बाप की बड़ी दुलारी है, यह अलबेली है, यह रानी बनना चाहती है। देखो, मैं जीती रही, तो इसको रानी बनने का मजा चखा कर छोड़ दूँगी।" पाठिकाओ! तुम इस उत्तर के देने वाली महिला को पहचान

गयीं। यह भी वही सास कहलाने वाली महाकालिका की अवतार हैं।

प्रातःकाल से आधीरात तक एक बैल का परिश्रम करके एक अबला बे-सुध सो रही है। अभी पहर रात शेष है, एकाएक उसके सिराहने बिजली सी कड़क सुन पड़ती है—"राजरानी! अभी नींद नहीं खुली। पौ फटने को आया। क्या पलंग छोड़ने को जी नहीं चाहता? बाप से क्यों नहीं कहा, मुझको राजा के घर डालो, मैं दस बजे तक शय्या पर पड़ी पड़ी करवटें बदला करूँगी। घर का सारा धंधा पड़ा है, इस निगोड़ी को सुख नींद घेरे है।" पाठिकाओ! तुम तो समझ गई होंगी कि यह बिजली सी गिराने वाली देवी भी वही यमरानी सास है।

होली का त्योहार दो दिन रह गया है। एक युवती महीनों से एक साड़ी रंगा कर यत्न से रक्खे हुए है और "त्योहार के दिन पहनूँगी," यह विचार कर प्रसन्न हो रही है,। एक बूढ़ी महिला को दिखला कर बड़े उत्साह से कह रही है,"अम्मा! इसे मैंने होली के दिन पहनने के लिये रक्खा है।" महिला कहती है,"वाह, बड़ी पहनने वाली निकली। यह साड़ी कल लल्ली के यहाँ जावेगी। पुरानी साड़ी धुली रक्खी है, जी चाहे तो गुलाबी रंग में रंग कर पहन, चाहे नंगी रह। बड़े बाप की बेटी बनी है, बाप से मंगा कर क्यों नहीं पहनती?" पाठिकाओ! तुम्हें कुछ संशय तो नहीं है? यह बुड्ढी चुड़ैल भी भारत की गौरव-नाशिनी एक सास ही है।

हा! इस घोर अत्याचार के कारण कितनी बहुएँ स्वर्गलोक को चली जा रही हैं, पर इन पाप परायणा दयाशून्या सासों

को तनिक दया नहीं आती। मेरी आँखों की देखी एक घटना है, जिस को आज १८ वर्ष बाद भी स्मरण करके मेरा कलेजा खण्ड खण्ड हो रहा है।

मेरे मुहल्ले में एक कहार था। उसकी एक बूढी मा, एक बहन और एक पत्नी थी। वह बूढी भी उसी नमूने की सासों में से थी, जिनकी थोड़ीसी महिमा मैंने ऊपर वर्णन की है। बेचारा कहार बड़ा सीधा था। उसकी पत्नी वैसी ही क्षमा शीला और सदाचारिणी थी। पर मा बेटी कर्कशाओं की सेना के दल की एक २ सरदार थीं। उन सबों ने मुहल्ले में पाँच छः घरों का चौका बर्तन और पानी भरने का काम उठा रक्खा था। मा बेटी तो लल्लो पत्तो ही करके बैठी रहती थीं, पर सारा काम उसी बेचारी बहू के सिर पर पड़ता था। तिस पर भी मा बेटी कभी प्रसन्न चित्त से बहू से एक बात भी नहीं बोलती थीं। हाँ बहाना ढूँढ़ कर कोसना, पीटना रोज़ जारी था और पेट भर कर अन्न पतोहू को किसी दिन नसीब नहीं होता था। उसके दो बच्चे पैदा हुए और दोनों मर गये। मरते क्यों नहीं पहले तो आहार की कमी से बेचारी के दूध होना ही बहुत कम था; तिस पर दिन भर काम धन्धे के मारे उसको समय पर दूध पिलाने का मौक़ा ही नहीं मिलता था। जब उसके दूसरा बच्चा पैदा हुआ, मा बेटियों ने उस प्रसूती की कोई दुर्गति उठा नहीं रक्खी और सब सत्कार तो किनारे रहा, प्रसूतागार में उसको दोनों ने दाने दाने को तरसा डाला। उसकी शारीरिक शक्ति बिलकुल नष्ट हो गई और दस दिन भी नहीं बीते थे कि उन दुष्टाओं ने उसके सिर पर हंडा रख दिया और घर घर का पानी भराना और उद्यम कराना प्रारम्भ करा दिया। १५ दिन बाद बच्चा मर गया और महीने भर बाद

वह भी रोगी होकर खाट पर गिर गई, ११ दिन बीमार रह कर मृत्यु की सहायता से इस घोर आपत्ति से मुक्त होकर स्वर्ग को सिधार गई।

कुछ दिन बाद उस कहार ने दूसरा ब्याह किया। नई बहू दो जीते पतियों को तिलांजलि देकर आई थी। अबके यह वह नहीं थी, यह सास जी की भी चची थी। सास एक इञ्च थी तो बहू नव इञ्च थी! उसने घर में चरण पधारते ही सास जी के बाल नोचने शुरू कर दिये। पहले तो सास जी ने पुरानी कला प्रकट करने में बड़ी योग्यता दिखलाई, पर लोहे को लोहा ही काटता है, अब के उनकी कला दब गई। बहू ने एक गाली के बदले दस गालियों का और एक चपत के बदले दस धौल का भाव निर्धारित कर दिया। भला इस बिकट संग्राम में सास जी को जय कैसे प्राप्त होती। अन्त में विष हीन सर्प के समान थक कर हार बैठीं। फिर तो बहू ने सारी गृहस्थी अपने हाथ में लेली और सास जी दाने २ को तरसाने लगी। अन्त में उनको किनारे कर बर्तन भाँड़े भी अलग कर लिये। कहार था निरा सीधा, वह भी जोरू का टट्टू बन गया। अब वह सास जी की दिन दिन भर हड्डी तोड़ती थी, तब कहीं मुँह मे आहार पड़ता था, नहीँ तो बस उपवास ही उपवास हुआ करता था। मैंने उस बुड्ढी को एक दिन उस मोहल्ले की एक मालिन से रो रो कर यह कहते हुए कान से सुना था, "बेटी! किसी का दोष नहीं, मैंने पहले लक्ष्मी का निरादर किया है, उसीका फल भोग रही हूं।"

"पाठिकाओ! भली भाँति ध्यान देकर विचार करो, जिस देश के सहस्रों घरों में इस प्रकार पाप हो रहा

हैं; जहाँ निर्दयता, निष्ठुरता और कराल क्रूरता की भयानक ध्वजा इस तरह फहरा रही है, जहाँ अन्याय, स्वार्थपरता और अत्याचार की कालिमा से गृह रंगा हुआ है, वहाँ की अवनति, दुर्गति, कष्ट, क्लेश और नारकी जीवन के कारण विचारने में क्या परिश्रम है।

हे देश की सास कहलाने वाली देवियो! दया करो। अब बहुओं को चाट जाने वाली पापाग्नि की उठती हुई लपटों को सिकोड़ लो, अब हृदय पर से पाप पंक को साफ़ करो। उसको दया, क्षमा, सुशीलता और शान्तिमय प्रेम-पियूष से भर दो। बहुओं पर प्रेम प्रभाव डाल कर उनको वशीभूत करो, उनके दुख, दर्द, स्वास्थ्य, और मानसिक भावों का विचार करते हुए उनसे उचित समय पर काम लो। ये मातृ वियोगनी असहाय कन्याएँ भी तुम्हारी पुत्री हैं। फिर देखो, तुम्हारी गृहस्थी कैसी सुखद, कैसी शांति-मयी, कैसी आनंद-दायनी और कैसी मन मोहिनी बन जाती है। देखो, तुम्हारे क्रूर आचरणों से भारत का बड़ा अपकार हो चुका, अब अपने चरित परिवर्तन से यह क्लेश दूर करो। याद रक्खो एक दिन परमात्मा को भी मुँह दिखाना है।

